योगदा सम्वाद

YOGODA SAMBAD

आध्यात्मिक पत्रिका

पत्रिका :—शरीर, मस्तिष्क, एवं आत्मिक आरोग्य के हेतु एक भेंट

अक्टोबर-दिसम्बर १९८३ मूल्य २.५०
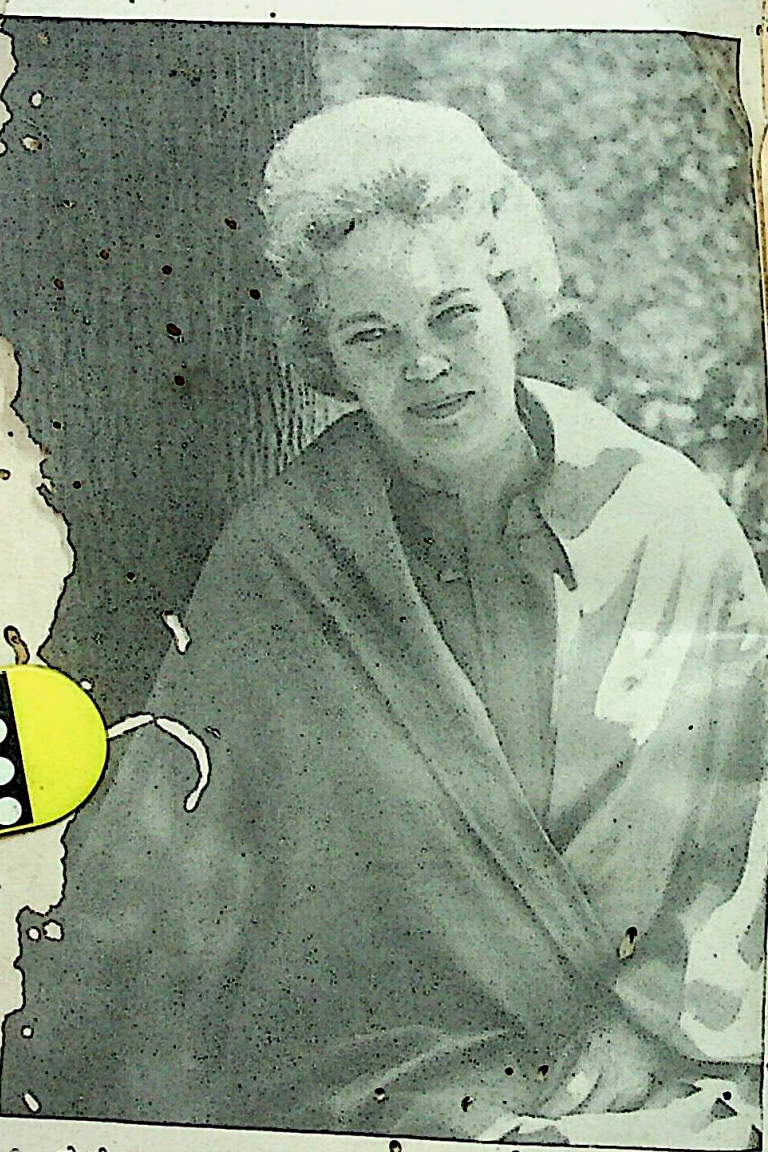
श्री श्री दयामाता जी, एस० आर० एफ० के एन्सीनीटस आश्रम के उद्यान में ।

योगदा सम्वाद

(आध्यात्मिक पत्रिका)

Yogoda Sambad

श्री श्री परमहंस योगानन्द द्वारा संस्थापित

Vol. 15, No. 4 संख्या-१५ खण्ड-४
Oct.-December 1983 १९८३ अक्टोबर-दिसम्बर

आवरण पृष्ठ : श्री श्री परमहंस योगानन्द जी गुरुदेव तथा संस्थापक, योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया/सेल्फ-रीयलाईजेशन फैलोशिप।

अनुक्रमणिका

योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया, दक्षिणेश्वर

सम्पादक—श्री शोभेन राय

योगदा सत्संग प्रेस, राँची-८३४००१ (बिहार) में स्वामी शरणानन्द गिरि द्वारा योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया के लिए प्रकाशित एवं मुद्रित त्रैमासिक पत्रिका।

ग्राहक शुल्क दर: वार्षिक १०.०० रुपये, प्रति तीन वर्षों के लिए २५.०० रुपये। एक प्रति २.५० रुपया। भारत, नेपाल तथा श्रीलंका से बाहर ग्राहक शुल्क दर: वार्षिक २.०० यू० एस० डॉलर, तीन वर्षों के लिए ५.०० यू० एस० डॉलर। ऐसे ग्राहक कृपया अपना शुल्क सेल्फ-रीयलाइजेशन फैलोशिप ३८८० सान रेफेल एवेन्यू (San Rafael Avenue) लॉस ऐंजेलस, कैलिफोर्निया ९००६५ यू० एस० ए० को भेजें।

ग्राहकों से निवेदन है कि अपने पते में परिवर्तन-सम्बन्धी सूचना पत्रिका के छपने की नियत तिथि से एक मास पूर्व दें।

क्या हम पूर्व-परिचित हैं ?
(Did We Meet Before?)

श्री श्री परमहंस योगानन्द

सेल्फ-रीयलाईजेशन फैलोशिप/योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया के हालीवुड मन्दिर, कैलीफोर्निया में १० जनवरी १९४३ में दिया गया भाषण ।

क्या हम पहले मिले हैं ? निःसन्देह, बहुत समय पूर्व आकाश के वक्षस्थल पर हम आत्माओं के रूप में थे। वहीं हम सब भगवान के विवेक की चादर के नीचे सो रहे थे। जब उसने हमें जगाया, तो हम बाईबल की कथा के अपव्ययी पुत्र की भाँति अपने पिता प्रभु से दूर जा चुके थे और अपने पारस्परिक दैवी सम्बन्ध को भुला चुके थे। हम सब एक दूसरे से अपरिचित हो गए थे। ईश्वर में अपने घर को छोड़ने पर हम इस धरती पर नियति के मित्रहीन यात्री बन गए हैं। क्या आप जानते हैं कि आप कितनी दूर भटकते जा रहे हैं ? कितने जन्मों से—यह बताना कठिन है। तथापि यदाकदा कुछ अनुभवों, स्थानों एवं चेहरों द्वारा आप में अपनी आन्तरिक जान-पहचान के भाव जाग्रत हो जाते हैं जो पूर्व-परिचय को फुसफुसा देते हैं।

प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञ है परन्तु बाह्य शरीर के साथ एकीभूत अहंकार-मयी अपनी प्रकृति के द्वारा वह अपने वर्तमान नाम, परिवार तथा वातावरण तक ही सीमित रह जाता है। जिस दिन आपकी आत्मा अपनी दैवी व्युत्पत्ति को स्मरण कर लेगी उस दिन आपकी चेतना परमात्मन् के भवन में पुनः जीवित हो जायेगी तथा आपको आत्मन में जो कुछ भी है, सब उसी प्रकार ज्ञात हो जायेगा जैसे आप अपने छोटे से सांसारिक घर तथा परिवार को जानते हैं।

किसी पूर्व-परिचित व्यक्ति—जिसके साथ पूर्व जन्मों में जीवन के मार्ग पर आपने सह-यात्रा की थी, को मिलना और पहचान लेना अत्यन्त विचित्र अनुभव है। मैं अपने परिवार के लोगों को पूर्व-जन्मों से जानता हूँ तथा मैं बहुधा ऐसे अन्य लोगों से भी मिलता रहता हूँ जिनसे मैं पूर्व-जन्मों से परिचित था। उदाहरणार्थ मेरे बचपन के मित्र। यद्यपि मेरे वर्तमान जीवन से उनकी समानता नहीं है तथापि वे वही आत्माएं हैं जो मुझसे पूर्व-परिचित हैं।

भारत से इस देश में आने के पूर्व तथा बाद में पहली बार मेरे बोस्टन पहुँचने तक मैं जानता था कि मैं अपने पूर्व-जन्मों के बहुत से मित्रों को यहाँ पर फिर से मिलूँगा। जब इस जन्म में मैं ऐसे व्यक्तियों को मिला जिनसे मैं पहले भी परिचित था तो मैंने उन्हें भली प्रकार पहचान लिया था। उनमें से कुछ को मैंने कहा "अन्त में मैंने आपको फिर से ढूंढ लिया है क्योंकि हम पहले भी साथ रहे हैं। आपने इतने समय तक क्यों प्रतीक्षा की है? "मैं उनलोगों को ढूँढता हूँ जो यहाँ आकर ईश्वर के काम में मेरी सहायता करते हैं। प्रतिदिन मैं उन्हें ढूँढता हूँ।" "तुम कहाँ हो जो पहले मेरे साथ चला करते थे।" "अचानक भीड़ में मुझे एक चेहरा दिखाई पड़ता है और मैं स्वयं से कह देता हूँ, "वहाँ वही व्यक्ति है, जिसने मेरी आवाज सुन ली है।"

आज भी मैं ज्यों ही आपके चेहरों को देखता हूँ तो मैं यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि कभी, कहीं किसी धुँधले अतीत में तुमने मेरी वाणी को सुना है और उसी वाणी की पुकार आपको यहाँ ले आई है। तब यदि उस ईश्वर ने आपको नहीं चुना है तो क्यों लाखों लोगों में से आप ही यहाँ आने के लिए उत्सुक हुए?* कुछ आत्माएं—जो अज्ञान की नींद, जो पूर्व स्मृतियों पर आवरण डाल देती है, से कुछ-कुछ जगे

---

*दिव्य नियम का एक संकेत कि भगवान, गुरु तथा भक्त द्वारा चलने वाले पथ को उस तक लौटने के लिए निर्धारित करता है। एक बार गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बन जाने पर ईश्वर के आशीर्वाद पाने पर वह जन्म-जन्मान्तरों तक—भक्त के ईश्वर तक पहुँचने तक—चलता रहता है।

हैं—रुक जाते हैं तथा सोचते हैं "हाँ मैं जानता हूँ कि वह क्या कह रहा है। कहीं पर मैंने उसकी वाणी को पहले भी सुना है। यह मेरे लिए अपरिचित नहीं है।"

मैंने सामान्य रूप से संयत रहने वाले अपने गुरु स्वामी श्रीयुक्तेश्वर जी को उतना उद्विग्न कभी नहीं देखा था जितना मैंने उनसे अपनी प्रथम भेंट के समय देखा था। वे जानते थे कि मैंने तुरन्त जान लिया था कि वे कौन थे और वे यह मुझसे भी अधिक जानते थे। जैसे कृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के प्रति कहा था, "हे अर्जुन मैंने और तुमने अनेकों जन्मों के अनुभव किए हैं। मैं उन सबको जानता हूँ और तुम्हें उनका स्मरण नहीं है।"* मैं उस आनन्द की अनुभूति को कभी नहीं भूल सकता जो मुझे अपने गुरु की पहली भेंट में ही पहचान लेने पर प्राप्त हुई थी। मैं अपने जीवन में कभी भी इतने महान व्यक्ति को नहीं मिला था जितने मेरे गुरु थे। वे ईश्वर के आत्मन् में निवास करते थे।

श्रीयुक्तेश्वर जी बहुत नम्र एवं कठोर स्वभाव के भी थे। यदि आप उनके साथ एक मित्र की तरह व्यवहार करेंगे तो आपको उनके सामने कायर बनने का कभी अवसर नहीं मिलेगा; यदि आप उनके पास एक शिष्य बनकर जायेंगे और यदि उनके कठिन अनुशासन को सहन न कर सकेंगे तो आपको बहुत कष्ट झेलना पड़ेगा। बहुत से व्यक्ति उसे सहन नहीं कर सके। परन्तु मैंने जब यह देखा कि वे मेरे मन से सब बुरे विचार निकाल कर दिव्य ज्ञान भर रहे हैं तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। वे इस प्रकार के अद्भुत ज्ञान के उद्गम थे क्योंकि जब कोई व्यक्ति ईश्वर से वास्तव में प्रेम करता है तो उसे वह सब ज्ञात हो जाता है जो ईश्वर को ज्ञात है। गुरुजी ईश्वर के सच्चे प्रेमी थे।

इस प्रकार एक अर्थ में आप एक अजनबी यात्री हैं जो इस संसार में अकेले यात्रा कर रहे हैं। आपका अपना कहलाने वाला कोई नहीं है। क्या यह सत्य नहीं है? कोई भी किसी दूसरे का स्वामी नहीं

---

*भगवद्-गीता ४:५

है। हमारे कार्मिक लक्ष्यों का अपना-अपना व्यक्तिगत मार्ग है तथा कोई भी किसी को अपना बना अथवा नियंत्रित नहीं कर सकता।

परन्तु दूसरे अर्थों में आप संसार में अकेले नहीं हैं। हमारे कुछ अन्तरंग सम्बन्धी होते हैं जो हमें सहन करते हैं तथा उनसे हमें सहारा और आनन्द मिलता है। वे आपके निकटतम आत्माएं कौन हैं? वे सदा ही आपके परिवार में जन्म लेने वाले नहीं होते। परन्तु आपके मन में उनके प्रति गूढ़ मैत्री के बन्धन की भावना रहती है। उदाहरण के लिए यहाँ आश्रम में वे लोग हैं जो मेरे आस-पास रहते हैं। मैंने उन्हें अपने आदर्शों पर प्रशिक्षित किया है। वे मेरे विचारों तथा मेरे अनुभवों को प्रतिबिम्बित करते हैं। वे मेरा ध्यान रखते हैं और मैं उनका। मैंने अपने जीवन को उनमें अंकुरित किया है और जिस दिव्य मैत्री का हम सब अनुभव करते हैं, वह भगवान के प्रति अखण्ड बंधन है।

मैत्री की आधार-शिला एक ही जन्म में नहीं रक्खी जा सकती। मित्रता के भवन का निर्माण करने के लिए कई जन्मों की आवश्यकता होती है। वह उन आत्माओं द्वारा बनाई जाती है जिन्हें आप जन्म-जन्मान्तर से जानते हैं। यही कारण है कि जीसस क्राइस्ट ने जनसमूहों में से अपने शिष्यों को—जिनसे वे परिचित थे—एक-एक करके पुकारा था। अनन्त मैत्री के वक्षस्थल पर वे पुनः मिल गए थे।

आप किस प्रकार अपने पूर्व परिचितों को पहचान लेते हैं? कभी कभी अपरिचित जन-समूह में से कोई एक व्यक्ति पहली ही भेंट में आपको ऐसा लगता है कि वह आपका पुराना परिचित हो। आपको दूसरे लोगों के प्रति अपनापन नहीं लगता चाहे आप उनके साथ कितना ही मेल-जोल बढ़ा लें। यदि आप पूर्व-धारणाओं से विचलित नहीं होते और न ही कामुक भावना द्वारा आकर्षित होते हैं तब आपको कुछ आत्माएं ऐसी मिल जाती हैं जिनके चेहरों एवं व्यक्तित्वों द्वारा आप दूसरों की अपेक्षा अधिक बलपूर्वक आकर्षित होते जाते हैं, तो यह संभव है कि वे आत्माएं आपसे पूर्व-परिचित रही हों।

आप एक छोटे से परीक्षण द्वारा यह जाँच कर सकते हैं कि पूर्वकाल

में कौन-कौन आपके सच्चे मित्र थे। आपके बहुत से नाम के वास्ते मित्र हो सकते हैं, वे आपको कहते होंगे कि आप एक विलक्षण व्यक्ति हैं और वे आपकी बातों में सहमत रहेंगे। ऐसे लोग केवल स्वार्थ के लिए ही आपको चाहते हैं। सच्चे मित्र तो आपकी उपस्थिति के आनन्द के अतिरिक्त आपसे कुछ नहीं माँगेंगे। कभी-कभी मित्रों की परीक्षा आपके द्वारा उद्विग्न करने अथवा उनका विरोध करने की परिस्थिति में भी उनके आपके प्रति व्यवहार द्वारा की जा सकती है। जो आपके अपने होंगे वे कदापि आपसे प्रतिकार नहीं लेंगे अथवा आपका साथ नहीं छोड़ेंगे। चाहे वे आपके साथ सहमत न भी हों। जो पहले जन्मों के आपके मित्र थे वे सदा आपसे अप्रतिबन्धित प्रेम करेंगे। आप कुछ भी करें वे सदैव आपके मित्र ही बने रहेंगे। जो व्यक्ति आपसे अप्रतिबन्धित प्रेम करता है, वही आपका पूर्व परिचित था। आपको भी उसी प्रकार का मित्र बनना चाहिए। पूर्व-जन्मों के मित्रों के विषय में विचार आप आपसी अनुकूल व्यवहार में भागीदार बनने के कारण कर सकते हैं। आप ज्यों-ज्यो अपनी चेतना को पारस्परिक मैत्री के विकास पर एकाग्र करेंगे त्यों-त्यों आपको पता लगना आरम्भ होता जायेगा कि वह व्यक्ति उत्तर देने से पूर्व किस प्रकार अनुभव करता अथवा व्यवहार करता है। यदि थोड़ी सी पहचान में ही आप ऐसा कर सकेंगे तो निःसन्देह आप उस व्यक्ति से पूर्व-परिचित थे। ये कुछ एक लक्षण हैं जिनके द्वारा आपको पता चल जाता है कि आप पूर्वजन्म के मित्र थे।

सबके साथ मित्रता रक्खो परन्तु सबसे अपने मित्र बनने की आशा तब तक न करो जब तक वे इन परीक्षणों में उत्तीर्ण न हो जायें! यदि वे असफल होंगे तो उन्हें अपना प्रेम एवं आदर तो प्रदान करें परन्तु स्मरण रखें कि वे आपकी मित्रता के लिए तैयार नहीं हैं। आपको अपने मन एवं भावनाओं को उनसे ठेस नहीं लगने देना चाहिए। मित्रता के भवन की आधारशिला ठोस होनी चाहिए। यदि आपके मित्रों के विचार आपके विपरीत हों तो इसी कारण उनसे मित्रता तोड़ दो। तभी आपको ज्ञात होगा कि वे वास्तव में आपके मित्र नहीं थे। आपके—

अपनी मित्रता के भवन को उन सम्बन्धों की रेत पर नहीं बनाना चाहिए।

वहुत से लोग स्वार्थी होते हैं। वे दूसरों को उनसे कुछ ले लेने के लिए प्रसन्न करना चाहते हैं। ऐसे "हाँ में हाँ" मिलाने वाले लोग समय की स्वार्थपरकता द्वारा प्रेरित होते हैं। अपनी इच्छा-शक्ति की स्वतंत्रता का कदापि त्याग न करो अथवा अपने स्वार्थ के लिए अपने विवेक एवं आदर्शों के साथ समझौता मत करो। आप सच्चे तथा हितैषी वनो तो धीरे-धीरे मित्रता वढ़ती रहेगी। मुझे अपने गुरु के साथ सच्चाई पर एक वाद-विवाद का स्मरण है। मैंने कहा था "सच्चाई ही सव कुछ है।" उन्होंने उत्तर दिया "नहीं, सच्चाई और विवेक ही सव कुछ है।" उन्होंने पुनः कहा "मान लो कि आप अपने घर की वैठक में वैठे हैं और फर्श पर एक सुन्दर कालीन विछा हुआ है। वाहर वर्षा हो रही है। एक मित्र जिसे आप वहुत वर्षों से मिले नहीं थे, द्वार खोलकर आपका अभिवादन करने के लिए कमरे में घुस जाता है।"

मैंने गुरुजी की वात पूर्ण होने से पूर्व ही कह दिया "यह तो ठीक है।"

उन्होंने कहा "आप दोनों परस्पर मिलकर वास्तव में प्रसन्न हुए थे परन्तु क्या यह उचित न होता यदि वह कालीन को गन्दा करने से पहले कुछ सोच-विचार कर अपने कीचड़ भरे जूते उतार कर भीतर आता।" मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि वे ठीक कह रहे थे। आप किसी के विषय में कुछ भी सोचें अथवा वह आपके कितना भी निकट क्यों न हो सम्वन्धों को मधुर वनाने के लिए अच्छे व्यवहार और विवेक का होना वहुत अनिवार्य्य है। तभी मित्रता वास्तव में सराहनीय तथा प्रसंशनीय वन जाती है। जो घनिष्ठता आपको विवेकहीन बना दे वह मित्रता मित्रता के लिए हानिकारक है।

सच्चाई उन गुणों में से एक है जिनकी मैं प्रशंसा करता हूँ। मैं उनलोगों से मेलजोल नहीं वढ़ाता जो चापलूसी करते हैं। क्योंकि एक दिन ऐसी मित्रता टूट जाती है। आपको पता लगेगा कि आपने उनके

लिए अपना समय नष्ट किया है। सदा चापलूसी की ओर से सावधान रहो। दूसरों को सच्चे हृदय से प्रशंसा और मान देकर प्रोत्साहन दे देना अच्छा होता है परन्तु मिथ्या चापलूसी वह विष है जो ग्रहण करने वाले और प्रदान करने वाले—दोनों के आत्माओं का विनाश करता है। यदि कोई व्यक्ति चापलूसी को प्रेम से बड़ा समझता है तो वह मित्रता का अधिकारी नहीं है। जो लोग प्रेम प्रदान करते हैं वे चापलूसी नहीं करते और जो चापलूसी करते हैं, वे प्रेम नहीं करते।

यदि आप वास्तविक सच्चाई, विवेक तथा प्रेम करने वाले लोगों से मेलजोल करते हैं तो आप अपने पूर्व-परिचित लोगों को आकर्षित कर सकेंगे अन्यथा आपको कभी सच्चे मित्र नहीं मिल सकेंगे। अपने मित्रों को कभी गाली मत दो और न ही अपने मित्रों द्वारा अपनी स्वार्थ-पूर्ति करें। किसी को बिन माँगे अपना परामर्श न दें और जब इसे दें तो पूरी सच्चाई तथा दया के साथ दें और परिणामों से डरें नहीं। ठोस आलोचना होने पर भी मित्र एक दूसरे की सहायता करते हैं।

आलोचना को सहन कर सकना एक बड़ा गुण है। यह मैंने अपने गुरु से सीखा था। मैंने सदा ही ठोस आलोचना को सराहा है। मैंने कभी उन लोगों से प्रतिकार लेना नहीं चाहा जिन्होंने मेरी अन्यायपूर्ण आलोचना की थी और न ही उनके प्रति मन में दयाहीन भावना रखी है क्योंकि मैं जानता हूँ कि भगवान हमारे शत्रुओं द्वारा भी हमारी परीक्षा लेता है। क्या यह ठीक नहीं है? जब जीसस ने कहा था "पिता, उन्हें क्षमा कर दो क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।" तो वह दैवी सहायता तथा ज्ञान का प्रयोग कर रहा था। ऐसे जीवन तथा उदाहरण द्वारा ही हम यह समझ सकते हैं कि स्वर्ग का पिता कितना दयावान एवं प्रेम करने वाला है। महापुरुष ईश्वर की प्रकृति को प्रतिबिम्बित करते हैं।

एक महापुरुष यह नहीं सोचता कि वह महान है। जो कहते हैं कि वे महान हैं वे ऐसे नहीं होते और जो महान हैं उन्हें अपनी महानता के विषय में सोचने का अवकाश नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त आप

चाहे सोचते रहें कि आप कितने चमत्कारी पुरुष हैं परन्तु ज्योंही आप इसकी घोषणा कर देते हैं तो सब लोग आपको इसके विपरीत सिद्ध करना चाहेंगे। भावार्थ यह है कि मुक्तात्मा और सद्भावी पुरुष बनो और अपने जीवन में उसे घटाओ। कभी किसी को धोखा मत दो। एक नकली गुलाब कभी असली गुलाब नहीं बन सकता और एक असली गुलाब कितना भी कुचले जाने पर अपनी सुगन्ध बिखारता रहता है। अतः आप कदापि वैसा बनने का बहाना न करें जैसे आप नहीं हैं। यदि आप दूसरों के सामने अपना अहंकारपूर्ण प्रदर्शन करेंगे तो अन्त में संसार आपको त्याग देगा। भगवान को किसी प्रकार भी धोखा देने का प्रयास मत करो क्योंकि यह सोचकर कि आप उसे धोखा दे सकेंगे, आप अपने आपको ही धोखा दे रहे हैं। वह आपके विचारों के पीछे विद्यमान रहता है। यदि आप उसके प्रति सच्चे नहीं हैं तो वह आपसे दूर चला जायेगा वह केवल विनम्र एवं सच्चे भक्तों के पास आता है। जब आप उससे प्रेम करेंगे तो आप उसको जान सकेंगे और आप यह भी जान सकेंगे कि वह सब आत्माओं में पूर्ण रूप से विद्यमान है। चाहे वह आत्मा कोयले वाले अथवा हीरे वाले व्यक्तित्व द्वारा ढका हुआ हो, भगवान दोनों में एक समान विद्यमान है परन्तु हीरे वाला ईश्वर को पूर्णतया प्रतिबिम्बित करता है।

जब आप ईश्वर की मैत्री की उपलब्धि कर लेंगे तो आपको इसके समान कोई भी आनन्द नहीं मिल सकेगा और उस आनन्द को दूसरों के साथ बाँट लेने से बढ़कर चमत्कारी आनन्द कोई नहीं हो सकता। जब एक प्याला दूध से भर जाता है और आप उसमें और दूध भरते हैं तो वह बह जाता है। आपके पास इसका कोई उपाय नहीं है।

जब आप ईश्वर के साथ प्रेम करेंगे तो आप दूसरों से सच्चा प्रेम कर लेंगे। आपका आत्माओं का अन्तर्ज्ञान पवित्र—एक पारदर्शी दर्पण की तरह—होगा। जो कोई आपके सम्मुख आएगा, वह अपनी वास्तविकता में प्रतिबिम्बित होगा।

बहुत वर्ष पूर्व मैं कोडक के जार्ज ईस्टमैन से मिला था। बाहर

से वह एक लोहे की तरह ठंढा प्रतीत होता था। वह अपने लोकोपकार के कारण प्रसिद्ध है और निःसंदेह अन्य अधिक धनी लोगों की भाँति उसे अपने मिलने आने वालों के प्रति संदेह और अचम्भा होता था। वह यह नहीं समझता था कि मैं किस लगन के कारण उससे मिलने आया था। कुछ बातचीत करने के पूर्व ही उसने पूछा "क्या आप मेरे घर आने के निमंत्रण को स्वीकार करेंगे।" इसके उत्तर में मैंने कहा "मुझे प्रसन्नता होगी यदि आप भी मेरे निमंत्रण को स्वीकार करेंगे।" वह मान गया।

बाद में जब वह मेरे घर आया और उसने मुझे भोजन बनाते देखा तो बोला "आप जानते हैं कि मुझे भी खाना बनाना अच्छा लगता है।" हमारी दोनों की मित्रता और अधिक बढ़ी। फिर मैंने यों ही कह दिया "मिस्टर ईस्टमैन, क्या यह सत्य नहीं है कि अधिक धनवान लोगों के सच्चे मित्र नही होते? मैं आपसे एक मित्र की तरह मिलना चाहता हूँ एक धनवान के रूप में नहीं।" वह मुस्कराया।

उसी समय से इस दो घण्टों की भेंट में मैंने एक दूसरे ही ईस्टमैन—एक वास्तविक ईस्टमैन—को देखा क्योंकि मैंने उसे समझा और उससे वास्तविक मित्रता के स्तर पर भेंट की। अगले दिन उसने मेरे लिए एक कैमरा भेज दिया जो आज भी मेरे पास है।

जब आप अपने मित्रों से अप्रतिबंधित मित्रता करते हैं तो आप उनमें दैवी मित्रों को देखते हैं। इस प्रकार की मित्रता मैंने अपने सांसारिक पिता तथा इस पथ के गामी अनेकों आत्माओं में पाई है। जब हम सच्ची आत्माओं में मित्रता का विकास करेंगे तो एक दिन सबका मित्र आकर उस मैत्री के भवन में वास करने के लिए आएगा और ज्यों ज्यों आप सच्ची दिव्य मैत्री को विकसित करते जायेंगे तो एक दिन आप सबके साथ वैसा ही प्रेम करेंगे जैसा क्राइस्ट ने सबका मित्र बनकर किया था।

कृपा करके मेरे साथ प्रार्थना करो "हे प्रभु, सच्चे मित्रों के महान चरित्र में तेरा विवेक विद्यमान है, उनकी हंसी में तेरी महान मुस्कुराहट है। उनकी आँखों की चमक में तू मुझे देख रहा है। उनकी वाणियों में तू मुझसे बोल रहा है और उनके प्रेम में तू मुझसे प्रेम कर रहा है। ओउम् शान्ति अमेन।"

क्रिसमस की पूर्व सन्ध्या में ध्यान
(Meditation for Christmas Eve)

श्री श्री परमहंस योगानन्द

अपनी आँखों को उठाओ और अपने भीतर ध्यान करो। दिव्य ज्ञान के सूक्षर्म नक्षत्र को देखो और अपने विवेकपूर्ण विचारों को क्राइस्ट का सर्वत्र दर्शन करने के लिए उस दूरदर्शी नक्षत्र का अनुगमन करने दो।

आपको अनन्त क्रिसमस के प्रदेश, आनन्दमय सर्वव्यापी कुटस्थ चैतन्य में जीसस क्राइस्ट, कृष्ण सभी धर्मों के सन्त, महान निर्देशक गुरु मिलेंगे जो आपकी अनन्त आनन्दपूर्ण दिव्य पुष्पों द्वारा स्वागत करने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।
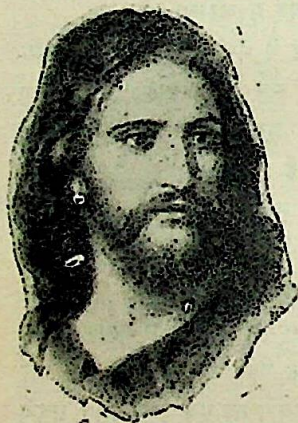
अपने आन्तरिक क्रिसमस वृक्ष को सजाकर बालक योशु के चारों ओर शान्ति, क्षमा, महानता, सेवा, दया, आध्यात्मिक सूझबूझ, एवं भक्ति के प्रत्येक उपहार को सद्भाव के सुनहरे आवरण में लपेटकर अपनी पावन सत्यता को चाँदी की रज्जू से बाँध लो।

अपनी आध्यात्मिक जागृति के क्रिसमस प्रभात में प्रभु उन अलंकृत उपहारों, आपकी हार्दिक भेंटों जो आपके आनन्द-अश्रुओं द्वारा बन्द किए गये हैं और जो उस प्रभु के प्रति आपकी अनन्त भक्ति की रज्जुओं से बंधे हुए हैं, को खोलें।

वह केवल पवित्र आत्मन् के गुणों को ही स्वीकार करता

है। उसकी स्वीकृति ही आपके लिए सबसे बड़ा उपहार है क्योंकि इसका अभिप्राय है कि जो उपहार वह आपको देगा वह उसके स्थान पर स्वयं उससे कम नहीं होगा। अपने आपको देकर वह आपके हृदय को इतना बड़ा बना देगा जिसमें वह समा सके। क्राइस्ट के साथ आपके हृदय की धड़कन ही सर्वस्व है।

क्राइस्ट के चमत्कारी नैन
(The Wondrous Eyes of Christ)

श्री श्री परमहंस योगानन्द

एक रात्रि में जब मैं प्रार्थना में लीन था एनसीनीटस आश्रम में मेरा कमरा एक दुधिया नीले प्रकाश से भर गया। मैंने भगवान जीसस क्राइस्ट की कान्तिमय आकृति का दर्शन किया।

एक युवा पुरुष जो लगभग पच्चीस वर्ष का था जिसकी दाढ़ी-मूछें हल्की हल्की सी थी, लम्बे बालों के मध्य माँग थी, वह झिलमिलाते स्वर्ण द्वारा प्रभा-मंडलित था।

उसकी आँखें शाश्वतीय चमत्कारपूर्ण थीं। ज्योंही मैंने दृष्टि डाली तो वे असीम मात्रा में बदल रही थीं। उनके प्रत्येक दिव्य पारगमन के भाव में मैं अन्तर्ज्ञान द्वारा अभिव्यक्त विवेक को समझ गया। उनके महान खेल में मुझे वह शक्ति प्राप्त हुई जो अगणित विश्वों को संभालती है।

—विस्पर्स फ्रॉम इटर्निटी
Whispers From Eternity

दैनिक जीवन में ईश्वर की प्राप्ति
(Finding God In Daily Life)

श्री श्री दयामाता जी

२० जुलाई १९७८ के वार्षिक सम्मेलन में देश-विदेश से आये एस० आर० एफ० के सदस्यों को दिये गये सत्संग के कुछ अंश।

भाग ३, समाप्ति

भक्त : संसार के एक भौतिक कार्य-वातावरण को सन्तुलित करने की सर्वोत्तम विधि क्या है ?

दयामाता जी : मेरे जीवन के अनेक वर्ष इस आश्रम में व्यतीत हुए हैं। परन्तु जब मुझे इस सोसाईटी की अध्यक्षा नियुक्त किया गया, मेरे उत्तरदायित्वों के कारण मुझे बाहर भ्रमण में जाना पड़ा। तब से मैंने सारे जगत का पाँच बार भ्रमण किया है, भारत तथा यूरोप के अनेक राष्ट्रों और अन्य स्थानों की यात्रा की। इसलिए मुझे उस प्रयास का कुछ बोध प्राप्त है जो मनःअन्तर में ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने और उसी समय संसार के आवश्यक कार्यों को संपन्न करने में है।

गुरुदेव ने, अपने शरीर-त्याग से लगभग एक वर्ष पूर्व, मुझसे कुछ कहा था वह मुझे स्मरण है। उस समय वे मुझे अधिकाधिक सोसाईटी के प्रबन्ध-कार्य में सम्मिलित कर रहे थे। हम दोनों हॉल कमरे से नीचे उतर रहे थे और वे मुझे कुछ आदेश दे रहे थे और इस संस्था के कार्य तथा भविष्य के विषय में अपनी कुछ इच्छाओं को व्यक्त कर रहे थे। मैं इस विशाल उत्तरदायित्व से अभिभूत होने का अनुभव कर रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सम्पूर्ण जगत मेरी ओर बढ़ रहा है और

वह मुझे कुचल देगा। जब गुरु जी लिफ्ट पर सवार हो रहे थे मैंने उनकी ओर देखकर उनसे निवेदन किया "गुरुदेव, यह मेरे वस की बात नहीं। ईश्वर में अपने मन को कैसे लगा सकूंगी—क्योंकि मैं यहाँ इसी कारण से आई थी—और साथ में इन सब कर्तव्यों का पालन कैसे कर सकूंगी?"

उस क्षण मुझे पूर्ण विश्वास था कि वे मुझे कोई गुप्त विधि प्रदान करेंगे या मेंरे सर पर अपने हाथ से स्पर्श कर आशीर्वाद देंगे जिससे मेरा संकट तत्क्षण दूर हो जाएगा। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने मेरी ओर बड़ी गम्भीरता से देखा और आकस्मिक रूप से बोले: "मेरे साथ भी कुछ ऐसी ही बीती थी।" उन्होंने पुनः कहा—"मुझे ऐसा करने से लाभ प्राप्त हुआ—एक निष्ठावान भक्त प्रातः चिन्तन करता है। वह दिन का आरम्भ शरीर को भोजन खिलाने से नहीं करता बल्कि अपनी आत्मा को चिन्तन द्वारा पोषित करता है। चाहे वह केवल दस या पन्द्रह मिनटों के लिए ही ऐसा करता है परन्तु वह चिन्तन गहन चिंतन होता है—ईश्वर से अपने हृदय की भाषा में वार्तालाप"

मेंरे विचार में एक सुखमय जीवन का यही रहस्य है चाहे हम आश्रमों में निवास करें अथवा संसार में और चाहे किसी भी प्रकार के कार्य में हम व्यस्त हों हमें आत्मा का पोषण सर्वप्रथम करना चाहिए। यह शरीर एक भवन के समान है और हमें इसकी देखभाल करनी चाहिए केवल उतनी ही जैसे हम अपने घरों में नये मेज कुर्सियाँ आदि लाते हैं और यदाकदा उनको रंग करते हैं। परन्तु हम शरीर नहीं हैं। हमें इस बात का स्मरण रखना चाहिए, क्योंकि हमें उसी क्षण से एक महत्त्वपूर्ण स्वतंत्रता की अनुभूति प्राप्त होती है जब हमें यह बोध होना प्रारम्भ हो जाता है "मैं यह भवन नहीं हूँ, मैं वह हूँ जो इस भवन में निवास करता है।"

इसलिए सर्वप्रथम आत्मा का पोषण करें जैसा कि गुरुदेव ने कहा था। जब आप प्रातः उठते हैं तो आपका प्रथम विचार ईश्वर के विषय में होना चाहिए। चिन्तन करें और अपनी आत्मा की साधारण भाषा में

ईश्वर से वार्तालाप करें। वह आपकी त्रुटियों में रुचि नहीं रखता इसलिए उनपर अधिक समय न खोएं। वह विगत हो चुकी हैं और वर्तमान में वह आपकी नहीं हैं। ईश्वर ने हमें शाश्वत काल के लिए केवल एक ही जीवन प्रदान नहीं किया है परन्तु इसका विभिन्न जीवनों में वर्गीकरण कर दिया है ताकि हम अपने गत बुरे कर्म को भूल सकें। यदि हम उन सबका स्मरण कर सकते तो हमारे अन्तःकरण पर एक इतना भारी बोझ पड़ जाता कि जिससे हम स्वयं को आरम्भ से ही शक्तिहीन अनुभव करते। हम पैदा होते ही स्वयं को निराश पाते। परन्तु ईश्वर हमें हमारे पूर्वजन्मों को भुलाने की आज्ञा देता है और हमें अपने इस जीवन की भी भूलों पर समय नष्ट न कर अपने मनों को उपयुक्त रूप से उपयोग में लाना चाहिए।

प्रातःकाल के चिन्तन के बाद फिर अपने दायित्व को करें। जब आप ऐसा कर रहे हों चाहे कैसा भी दायित्व हो इस बीच में कभी-कभी ईश्वर की ओर ध्यान दें। गहन प्रेम से उसका नाम लें। एक क्षण कार्य को छोड़कर यह सोचें: "वह इस शरीर को संचालित कर रहा है न कि मैं। मैं इस हृदय को गति नहीं दे रहा हूँ। ईश्वर मेरे सांस का कारण है और उसी के कारण मै आन्तरिक में जीवन-दायक ऑक्सीजन को ग्रहण करता हूँ।" हमारे जीवन में ऐसा कोई क्षण नहीं जब ईश्वर हमारा पोषण न करता हो। इसलिए उसको कभी-कभी अपने कार्य के बीच ध्यान में लाया करो। और दिन के अन्त में चाहे दस या पन्द्रह मिनट के लिए ही सही समय निकाल उसके साथ अकेले में व्यतीत करें।

इस प्रकार हम निरन्तर ईश्वर बोध की उस सुन्दर अवस्था में प्रवेश कर सकते हैं जिसको गुरुदेव ने उस समय व्यक्त किया जब उन्हें संत फ्रान्सिस का दिव्य-दर्शन इसी मन्दिर में हुआ और उन्होंने इस कविता की रचना की "ईश्वर! ईश्वर! ईश्वर।" इस कविता की अन्तिम पंक्तियां इस विचार को व्यक्त करती हैं—"जाग्रत होने, खाने-पीने, कार्य करने, स्वप्न देखने, सोने सेवा करने, चिन्तन करने गाने-बजाने, दिव्य प्रेम करने

में"—पति-पत्नि, सन्तान, मित्र सब मेरे प्रियजनों से—"मेरी आत्मा निरन्तर गुनगुनाती है जिसे कोई अन्य सुन नहीं पाता, ईश्वर ! ईश्वर ! ईश्वर !"

इन विचारों को मनुष्य के दैनिक कार्यों में लाना संभव है—एक भौतिक कार्य-वातावरण में भी। अपने जीवन को आध्यात्मिक बनाओ जिससे आपको यह वोध प्राप्त हो सके कि ईश्वर मौन धारे आपका अवलोकन कर रहा है। इससे आपके जीवन के भौतिक पहलू पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। इससे आपको वोध प्राप्त होगा कि आप जो कुछ भी हैं, जहाँ कहीं भी ईश्वर ने आपको नियुक्त किया है वहीं पर वह पहुँच सकता है यदि आप उसे अपने हृदय तथा विचारों में आने की अनुमति दें।

अनुयायी : मैं आपके टेप, "एक प्रज्वलित हृदय" को सुनता रहा हूँ। ऐसी ईश्वर के प्रति भक्ति जैसी कि आपकी है एक व्यक्ति कैसे विकसित कर सकता है? सम्पूर्ण सृष्टि में प्रत्येक वस्तु तथा मानव के साथ एकाकार का अनुभव वहुत कठिन प्रतीत होता है। मेरी अभि-लाषा इस अनुभूति की है परन्तु मुझे प्राप्त नहीं है—इस कारण मैं चिन्तित हो जाता हूँ। उस अवस्था को कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

दयामाता जी : ईश्वर की खोज का आरम्भ उत्कंठा से होता है। हमें सत्य के लिए ललकना चाहिए, ईश्वर के साथ किसी प्रकार के सम्वन्ध के लिए। इसलिए प्रथम क्षमता जिसका विकास आवश्यक है वह है ईश्वर तथा उसके प्रेम के लिए उत्कंठा। इस वात को प्रायः कहा जाता है कि दुःख सव से महान शिक्षक हैं। कुछ सीमा तक यह सत्य है कि लोग जव मनुष्यों अथवा संसारी वस्तुओं द्वारा निराश हो जाते हैं तो वे ईश्वर की शरण लेते हैं। मेरे विचार में मैं इस स्थिति में पैदा हुई थी—मनुष्यों से निराश नहीं क्योंकि मैं उन्हें प्रेम करती हूँ—परन्तु वह ज्ञान जिसकी मुझे आवश्यकता थी न तो जगत और न ही कोई मनुष्य मुझे दे सकता था।

हम में से प्रत्येक व्यक्ति पूर्णता को अपना लक्ष्य वनाये हुए है, हममें से कोई भी पूर्ण-प्रेम, अन्य से पूर्ण-सम्वन्ध से कम के लिए अभिलाषी नहीं। वचपन से ही मेरी धारणा थी कि ऐसी पूर्णता इस जगत में उपलब्ध नहीं है। मुझे अनुभव था कि मुझे औरों से इसकी प्रत्याशा

करने का कोई अधिकार नहीं क्योंकि मैं स्वयं अपूर्ण हूँ। मैं अन्य लोगों से कैसे उस वस्तु की अभियाचना कर सकती हूँ जिसको देने की मेरे में क्षमता नहीं है? इस प्रकार तर्क से मेरी यह आकांक्षा विकसित हुई : "फिर मुझे ईश्वर की खोज को आरम्भ करना चाहिए।"

ग्रन्थों के अध्ययन से मेरे प्रथम विचारों में से एक यह था : "सर्वप्रथम तू ईश्वर के राज्य और उसकी धर्म परायणता की खोज कर, तव तुम्हें सर्वस्व प्राप्त होगा।"* मैंने इसकी मन ही मन में रट लगाए रखी। आप जानते हैं कि हम ग्रन्थों में से अनेक सुन्दर विचार प्राप्त कर कुछ क्षणों के लिए प्रभावित हो जाते हैं, फिर हम उन्हें अपने जीवन में उपयोगी बनाये विना भुला देते हैं। परन्तु ग्रन्थ सिद्धान्तों की एक पाठ्य-पुस्तक है और यदि उन सिद्धान्तों का हम अपने जीवन में उपयोग करें तो वह प्रमाणित-फल निश्चित रूप से उत्पन्न करते हैं जैसे गणित के नियम उत्पन्न करते हैं।

मैंने उस एक उद्धरण को अपने जीवन में घटाने का निर्णय लिया। मैंने तर्क किया कि या तो यह सत्य है अथवा यह किसी उस उच्च मनुष्य का एक निश्चय ही यशस्वी कथन है जिसे दैनिक जीवन के कक्ड़ीलेपन का सामना नहीं करना पड़ा। मैं उस एकमात्र सूत्र : सर्वप्रथम ईश्वर को खोजो; का पालन करती रही, ग्रन्थ मुझे सिखाते हैं कि इसके वाद सब वस्तुएं अपने उचित स्थान पर व्यक्त होंगी, और सब कुछ जो मुझे चाहिए मुझे प्राप्त हो जायगा। जब भी किसी प्रकार का प्रलोभन अथवा विकर्षण मेरे सामने आता, मैं उस सूत्र पर 'उसे खोजो' पर अटल रहती। मैंने अपनी तुष्टि के लिए प्रमाणित किया कि महान आत्माओं को भी इन संघर्षों, मनोव्यथाओं और निराशाओं का सामना करना पड़ा था जिसे सम्पूर्ण मानवजाति को करना पड़ता है। जिन सत्यों का उन्होंने प्रशिक्षण दिया और उसका स्वयं उपयोग किया, वह हमारे निजी जीवनों को भी रूपान्तरित करेगा।

गुरुदेव भी इसी सूत्र को अन्य शब्दों में व्यक्त किया करते थे जब

*मैथ्यू ६:३३

वे कहते थे, "अपने जीवन को एक ही लक्ष्य वाला वनाओ। ईश्वर को अपने जीवन का ध्रुव तारा बनाओ।" यदि आप ऐसा करेंगे तो इसका अर्थ है कि आप ईश्वर की खोज को प्रथम स्थान देते हैं। तब सब वस्तुएं आपको प्राप्त होंगी।

ऐसा न सोचें कि ईश्वर की खोज में आपको संसार को छोड़ देना होगा। मैं भक्तों को प्रायः कहा करती हूँ, गुरुजी की संस्था के कार्यों की देखभाल के मेरे दायित्व जो केवल इस देश में ही नहीं परन्तु भारत में और विश्व के अन्य क्षेत्रों में भी हैं, मैं उतनी कार्यरत हूँ जितने तुम। परन्तु मेरा ईश्वर के लिए प्रथम स्थान है। मैं किसी भी वस्तु को इसमें हस्तक्षेप नहीं करने देती। आपको ईश्वर के प्रति इस प्रकार की उत्कंठा बनानी चाहिए और उसके लिए समय निकालने की इच्छाशक्ति भी, दैनिक चिन्तन के अभ्यास के विकास के द्वारा इसका आरम्भ होता है।

चिन्तन आपके लिए एक फीका नित्यक्रम नहीं बन जाना चाहिए। मैं अपने भ्रमणों के बीच मन्दिरों-मसजिदों और गिरजों में गई हूँ और सारे विश्व में मैंने भक्तों को उनकी प्रार्थनाओं को अन्यमनस्क रूप से करते देखा है। मुझे अपनी जरुसलेम की यात्रा का स्मरण है जब मैं उन पवित्र स्थानों पर गई जहाँ क्राईस्ट थे और पादरी को सत्संग लेते समय उसे यंत्रवत प्रार्थना करते और हम सब पर्यटकों में अधिक रूचि लेते देखा। मेरा आन्तरिक अनुभव था : "नहीं, नहीं, नहीं! तुम तो यहाँ क्राईस्ट के साथ सम्पर्क करने आयी हो!" इसी प्रकार भारत के मन्दिरों में मैंने पण्डितों को पूजा करते देखा वह जब ईश्वर से वार्तालाप कर रहे थे पूरे समय लोगों की ओर देखने में व्यस्त थे। ईश्वर, जिसकी वे प्रार्थना कर रहे थे वह उन्हें नहीं सुन रहा था क्योंकि वे जिज्ञासु ईश्वर की ओर ध्यान नहीं दे रहे थे। आधुनिक धर्म में गम्भीर त्रुटि यह है कि ईश्वर को, जिसमें इसे सकेन्द्रित होना चाहिए, बाहरी घटनाओं में विचारमग्न होने के कारण, भुला दिया जाता है। गुरुदेव की शिक्षा थी कि "जब हम चिन्तन में बैठते हैं तो हमें केवल एकमात्र ईश्वर पर

ही अपने विचारों को सकेन्द्रित रखना चाहिए और मैंने इस शिक्षा को अपनाया और इसी कारण मैं उनके प्रति अधिक स्नेह रखती हूँ इसी कारण प्रत्येक योगदा के अनुयायी भी वैसा करते हैं" चाहे पाँच ही मिनट के लिए ही क्यों न हो ईश्वर के साथ वार्तालाप करो उस समय कोई वस्तु उसमें बाधक न बनने दें और फिर आप अपने जीवन में परिवर्तन का अनुभव करेंगे।

यदि तुम "एक प्रज्वलित हृदय" से प्रभावित हुए हो तो याद रखो कि मैं केवल ध्वनि मात्र हूँ; गुरुदेव तथा ईश्वर ही प्रभाव हैं। जिस मार्ग को मैंने तथा गुरुजी के अन्य शिष्यों ने भी अपनाया, वह केवल सर्वप्रथम ईश्वर के लिये लालसा उत्पन्न करना और फिर उस श्रद्धा का पोषण करना है।

श्रद्धा का विकास कैसे होता है? एक विधि जो लाभदायक है वह है किसी उस व्यक्ति जिसे आप बहुत प्रेम करते हैं और जिसका प्रेम आपके लिये प्रेरक रहा है, पर अपना ध्यान सकेन्द्रित करें। वह व्यक्ति माता अथवा पिता, पति, पत्नि, सन्तान या मित्र हो सकता है। उस व्यक्ति के रमणीय गुण पर ध्यान करें और आपका हृदय प्रेम से उमड़ आये तो तत्क्षण अपने ध्यान को ईश्वर में लगाएं। उन क्षणों में यह विचारें: "हे ईश्वर यह व्यक्ति मुझे प्रेम करने में असमर्थ होता यदि तुमने उसमें प्रेम न भरा होता।" सम्पूर्ण प्रेम ईश्वर से प्रवाहित है। इस प्रकार के विचार द्वारा आप क्रमशः प्रेम का उस प्रियतम के लिए विकास कर सकते हैं जिसका प्रेम उनके पीछे है जिन्हें हम प्रेम करते हैं।

और फिर जब कोई आपकी सहायता के लिए कुछ करता है सदैव उस उपहार के पीछे ईश्वर के हाथ को देखें। जब कोई आपके विषय में शब्द कहता है उन शब्दों के पीछे ईश्वर की वाणी को सुनें। इस प्रकार की विचारधारा बनायें और एक दिन आपको अकस्मात बोध होगा "वास्तव में एकमात्र ईश्वर ही तो है जिससे मुझे सम्पर्क बनाना है" मानव की गतिविधियों के पीछे ईश्वर ही प्रधान परिवाहक है। वह सम्पूर्ण मानव-जाति के जीवन का सर्वनिष्ठ है।

ईश्वर तथा गुरुदेव आप सबका कल्याण करें।

श्रीमद्भगवद्गीता की आध्यात्मिक व्याख्या

श्री श्री परमहंस योगानन्द जी

अध्याय १८, श्लोक ३३

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

हे पार्थ (अर्जुन), वह धृति सात्त्विक है जो योगाभ्यास के द्वारा एकाग्र अथवा अव्यभिचारिणी बन चुकी है। अर्थात् जो भगवत्-विषय के सिवाय अन्य सांसारिक विषयों को धारण नहीं करती है। और जो मन, प्राण तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण अथवा नियन्त्रित करती है।

मुक्ति दो प्रकार के संयोग से होती है। एक भौतिक अहम् का आत्मा से संयोग है अर्थात् दूसरे शब्दों में, मिथ्या अहम् को सच्चे आत्मा से मिलाना है जो भगवान की प्रतिबिम्बित महान धन्यता को अभिव्यक्त करता है दूसरे प्रकार का संयोग आत्मा को सर्वव्यापक ब्रह्म में मिला देता है।

परन्तु भौतिक अहम् को इन्द्रियों के विषयों से पृथक नहीं किया जा सकता—जो आत्मा और परमात्मा के संयोग हेतु पूर्वापेक्षित है—जब तक कि मन, प्राण तथा इन्द्रिय-चेतना को शरीर तथा स्थूल जगत से हटाया नहीं जाता।

योग पाँच ज्ञानेन्द्रियों से प्राण शक्ति को रोकना तथा इस प्रकार मन और इन्द्रियों को वाह्य वातावरण से सम्पर्क-रहित करना सिखाता है। इस प्रकार जब मन को वाह्य जगत से हटा लिया जाता है तब वह स्वतः ही भौतिक अहम् को अपने वास्तविक, पावन सत्य आत्मिक स्वरूप में विलीन होने के लिए छोड़ देता है। जब योगाभ्यास के द्वारा मन, प्राण तथा इन्द्रियाँ भौतिक (शारीरिक) अशान्ति से अप्रभावित रहते हैं और पवित्र आत्मा पर केन्द्रित रहते हैं तो उस अनुशासित, संयमित, दृढ़तापूर्वक संस्थापित तथा केन्द्रित स्थिति को *धृति* कहते हैं।

धृति चलायमान न होने वाले धैर्य की वह अवस्था है जिसमें आत्मा इन्द्रियों के विषयों के आकर्षण से अप्रभावित अथवा उद्वेग-रहित रहता है।

सात्त्विक अथवा पवित्र बुद्धि प्रत्येक वस्तु में भगवान को देखती है। सात्त्विक-विवेक योगी को वांछित भगवत् साक्षात्कार तथा अवांछनीय इन्द्रिय लोलुपता का अन्तर वता देता है। *सात्त्विक-धृति* के द्वारा योगी केवल अच्छे और बुरे में अन्तर देखने के योग्य ही नहीं हो जाता वल्कि योग-प्रविधि के सफल अभ्यास द्वारा अपने आपको आत्म-साक्षात्कार की पावन अवस्था में अवस्थित रखने के योग्य भी हो जाता है। जब आत्मसाक्षात्कार की दृढ़ अवस्था प्राप्त हो जाती है तब वह इन्द्रियों की वाधाओं से सुरक्षित रहता है और इस प्रकार *धृति* की निरन्तर अवस्था को प्राप्त हुआ कहा जाता है जिसमें किसी सांसारिक भय का स्पर्श नहीं होता। *धृति* शब्द का अर्थ ठीक "धैर्य" नहीं है वल्कि संयम तथा आत्मसाक्षात्कार की वह भीतरी अवस्था है जो धैर्य की निरन्तर अवस्था को उत्पन्न कर देती है।

इस *सात्विक धृति* की चेतना से सम्पन्न योगी आत्मसाक्षात्कार के पवित्र दर्शन में अपने मन को अवस्थित रखता है और जागृत अवस्था में इन्द्रियजनित भावों से विक्षुब्ध नहीं होता। वह संसारिक जीवन में अच्छे और बुरे को, विना प्रभावित हुए तथा विना उनके जाल में उलझे, देखता हुआ विचरता है।

अध्याय १८, श्लोक ३४

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥

हे अर्जुन! वह राजसिक धृति (भीतरी दृढ़ धैर्य) कहलाती है जिसके द्वारा मनुष्य अपने मन को फल की इच्छा अथवा आसक्ति के कारण धर्म (धार्मिक कर्तव्य), इच्छा और धन में लगाता है।

आसक्ति के द्वारा एक संसारी मनुष्य *राजसी धृति* अथवा दृढ़ भीतरी धैर्य के द्वारा बाह्य धार्मिक क्रिया-कर्तव्यों, सांसारिक इच्छाओं और धन कमाने की चेष्टाओं से चिपका रहता है और इस प्रकार मोक्ष के मार्ग का दुरुपयोग करता है।

ऐसी राजस प्रकृति का मनुष्य फलेच्छा के कारण अपने मन, शक्ति तथा इन्द्रियों को भौतिक कार्यों में धैर्य से लगाए रखता है। जीवन को सत्य मानते हुए, इन संसारी मनुष्यों में से अधिकाँश स्वभाविक प्रवृत्तियों—धन कमाने, गृह संचालन और ऊपरी मन से धार्मिक क्रियाओं में भाग लेने के लिए लंगर लंगोटे कसकर तैयार हो जाते हैं। भौतिक अहम् के साथ एक रूप रहने के कारण वे आत्मा के निरन्तर अलौकिक सुख के लिए तुच्छ क्षणभंगुर भौतिक पदार्थों के त्याग में महान लाभ का अनुभव नहीं करते।

अध्याय १८, श्लोक ३५

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥

हे अर्जुन, वह तामसी धृति (भीतरी बुराई पर रहने की व्यवस्था) कहलाती है जिसके द्वारा एक मूर्ख मनुष्य अधिक निद्रा, भय, शोक, निराशा और अति अभिमान को नहीं छोड़ता।

तामसिक धृति एक विचारहीन मनुष्य की वह धैर्यपूर्ण मनोवृत्ति (रुख) है जिससे वह बुराई के साथ चिपका रहता है। तामसी अथवा

अविवेकी धैर्य मन्दबुद्धि मनुष्यों को स्वभाव से ही अधिक निद्रा, निरन्तर भय, शोक, निराशा तथा उद्धत अभिमान में व्यवस्थित रखता है। ये बुरे अवगुण महान विपत्तियों के अग्रदूत हैं। अहंकारी, अज्ञानतिमिरान्ध मनुष्य जो बहुत अधिक सोते हैं, आलसी, अननुशासित शरीर से एक-रूप हुए रहते हैं और इसे, सफलता तथा शान्ति प्राप्त करने के लिए, विशेष कार्य में लगाने के अयोग्य रहते हैं। मानसिक तथा शारीरिक आलस्य के कारण वे स्वाभाविक रीति से ही उदास रहते हैं जो एक असहनीय अप्रसन्न अस्तित्त्व को चलाने के भय में फलीभूत होता है।

दूसरे शब्दों में अधिक निद्रा से शारीरिक तथा मानसिक आलस्य और रचनात्मक कार्य से अरुचि उत्पन्न होती है। कार्य के अभाव से, व्यर्थ जीवन होने की चेतना द्वारा, निराशा उत्पन्न होती है। जीवन को एक बोझ समझने के स्वभाव से दुःख और दुःख के अनुभव के दुहराये जाने का भय उत्पन्न होता है। अहंकार मनुष्य को अपनी बुरी आदतों से संतुष्ट रखता है और मोक्ष की आशा से वञ्चित कर देता है।

सभी मनुष्यों को जो लगातार *तामसी धृति* को अपनाए हुए हैं और इस कारण से बुरी आदतों में व्यवस्थित हैं, अहं छोड़ देना चाहिए और अपने जीवन को उचित कार्य तथा उचित निद्रा से नियमित करना चाहिए और इस प्रकार मन को भय, निराशा तथा दुःख से मुक्त करना चाहिए।

सभी प्रकार के दारिद्र्य में अज्ञानता सबसे बढ़कर है।

—श्री श्री परमहंस योगानन्द जी

क्रियायोग द्वारा आध्यात्मिक परिवर्तन
(Spiritual Change Through Kriya Yoga)

स्वामी अचलानन्द

१६ जुलाई, १६८० को लॉस एंजिलस में आयोजित सेल्फ-रीयलाईजेशन फैलोशिप कान्वोकेशन समारोह में दिए अभिभाषण का संक्षेपण।

हम मानव इतिहास के गम्भीर परिवर्तन के युग से गुजर रहे हैं। संसार के विकास के क्रमचक्र की दृष्टि से हम कलियुग अथवा तमोयुग से पार हो चुके हैं, और द्वापरयुग में प्रवेश कर चुके हैं, जैसा कि स्वामी श्रीयुक्तेश्वर जी ने अपनी पुस्तक Holy Science (कैवल्य दर्शन) में स्पष्ट किया है। कलियुग की अवधि में मनुष्य की अविकसित चेतना भौतिक संसार की वस्तुओं तक सीमित रहती है; परन्तु जब हम इस नए उच्चतर युग में आगे बढ़ते जाते हैं, हमें प्रकृति के सूक्ष्मतर तत्त्वों का बोध होता जाता है। जैसे विद्युत और चुम्बकत्व की अतिसूक्ष्म शक्तियाँ। चाहे अभी तक इन शक्तियों का कुछ कम ही अनुमान लगाया जा रहा है, यह अतिसूक्ष्म शक्तियाँ हमारे शरीर के भीतर और बाहरी जगत में भी काम कर रही हैं।

हमारे उत्तरोत्तर बढ़ते ज्ञान के कारण और हमारे ऊर्जा-शक्ति के बढ़ते नियंत्रण के चलते, हम भौतिक विज्ञान में अत्यधिक उन्नति करते जा रहे हैं; परन्तु चाहे हम तेजी से असाधारण औद्योगिकीविज्ञ बनते जा रहे हैं, तो भी नैतिकता और आध्यात्मिकता की दृष्टि से हम अभी भी मानो बौने और अल्पबुद्धि जीव हैं; ऐसा प्रतीत होता है कि हम अभी तक कलियुग से पूरी तरह निकले नहीं हैं। हमारे पास भयानक मात्रा में वैद्युत और आणविक शक्ति है, परन्तु जब तक हम आध्यात्मिक अवबोधन का विकास नहीं कर लेते, हम इस अपार शक्ति का उचित प्रयोग नहीं कर सकते।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्यों इस समय-विशेष में क्रियायोग जो कि चेतना के उन्नत बनाने की एक महानतम प्रविधि है, संसार में पुनः प्रस्तुत की गई है। सन् १८६१ में, द्वापर युग के* प्रारम्भ से थोड़ा समय पहले श्री लाहिड़ी महाशय को महावतार बाबाजी ने क्रिया दीक्षा प्रदान की। इसके पचास वर्ष उपरान्त, सन् १६२० में, बाबाजी ने परमहंस योगानन्द जी को निर्देश दिया कि वह इस मुक्तिदायिनी विद्या को पाश्चात्य देशों के वासियों तक पहुँचाएं। तभी लोग इस दिव्य ज्ञान को समझेंगे और इसका मूल्यांकन कर सकेंगे। यदि परमहंस जी पश्चिमी देशों में इस समय से पहले पधारते, तो संभवतः वहाँ के लोग शक्ति-नियंत्रण के विचार को समझने में असमर्थ होते, जिसपर कि क्रियायोग आधारित है। वास्तव में सन् १६२० में भी कुछ ही व्यक्ति परमहंस जी के दैवी संदेश के लिए तैयार थे; और आज भी कोई बहुत बड़ी संख्या में लोग इस दिव्य-संदेश को समझ और ग्रहण नहीं कर सके हैं। परन्तु अब जब कि यह युग आगे-आगे बढ़ता जा रहा है अधिकाधिक गिनती में मनुष्य क्रियायोग की महत्ता को समझने में सफल होते जाएंगे, जैसा कि महावतार बाबाजी ने इस सम्बन्ध में भविष्य-वाणी की थी—"क्रियायोग जो कि प्रभु-सान्निध्य की एक वैज्ञानिक प्रविधि है, अन्ततः समस्त संसार में, सब देशों में फैल जायगा, और संसार के राष्ट्रों के बीच, मानव के व्यक्तिगत, अनुभवातीत अनन्त की अनुभूति द्वारा तालमेल और सामंजस्य स्थापित कर सकेगा।

जीवन का उद्देश्य

जीवन में कुछ भी निष्पन्न कर सकने के लिए हमें चार चीजों की आवश्यकता होती है:—सीखने की इच्छा, पूछ-ताछ करने की

---

*स्वामी श्रीयुक्तेश्वर जी ने अपनी पुस्तक 'कैवल्य दर्शन' में लिखा है कि द्वापर युग, इस पृथ्वी पर सन् १७०० में प्रारम्भ हुआ था; क्योंकि कलियुग और द्वापर में २०० वर्ष की अन्तःकालीन अवधि है, इस हिसाब से द्वापर युग वास्तव में सन् १६०० में ही प्रारम्भ हुआ था।

गम्भीर भावना, सीखने के विषय की ओर स्नेहपूर्ण ध्यान, और संलग्नता जो कि तब तक बनी रहे जब तक कि उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती। मनुष्य सहज ही में, आसानी से अपनी बौद्धिक उत्कण्ठा के चलते कई प्रकार के विवादों में उलझ जाता है, वह वाद-विवाद "जिनके कारण संसार की क्रिया चलती रहती है।" मनुष्य अपने जीवन का अधिकांश समय अपनी भौतिक आवश्यकताओं के जुटाने में लगा देता है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य अपनी शक्ति का, योग्यता का उपयोग कई अन्य इच्छाओं, कामनाओं की पूर्ति करने में लगा देता है। परन्तु प्रभु का साक्षात्कार पाने के लिए मनुष्य कितना समय खर्च करता है, यह सोचने की बात है। प्रभु का साक्षात्कार ही हमारे लिए सर्वाधिक आवश्यक है, यह तो एक सर्वसम्मत मत है। प्रभु ही हमारे जीवन का उद्गम, स्रोत और जीवन का अन्तिम, एकमात्र उद्देश्य है। जितनी जल्दी और जितनी तत्परता से हम ईश्वर-प्राप्ति का प्रयास करेंगे, उतनी जल्दी ही हम परमात्मा को पा जाएंगे।

मानव इतिहास में जितने भी उपदेश प्रभु-साक्षात्कार-प्राप्त महान आत्माओं ने मनुष्य को अपने संताप हरण हेतु दिए हैं, कि वह इनपर चलकर अपने जीवन-उद्देश्य की पूर्ति कर सके, उनको प्रायः मत-मतान्तरों के रूप में मन में बिठा दिया गया है; सीमित और मर्यादित बुद्धि वाले लोग उन सबका भाव अथवा सार नहीं जान पाते, और ऊपरी और अगम्भीर मीमांसा, व्याख्या की ऊहापोह में उलझ जाते हैं। यह है धर्मान्धता और सांप्रदायिकवादिता का कारण। उदाहरण के तौर पर, बाईबल में लिखे इस उद्धरण को लीजिए, जिसकी व्याख्या करने से जो उलझाव और वाद-विवाद खड़ा हुआ है,—"विश्रान्तिवार को याद रखिये; इसे पूरी तरह धर्माचरण में व्यतीत करें" (एग्ज़ोडस २०:८) एक पादरी साहब ने बीस वर्ष लगा दिए, यह सिद्ध करने में कि यह विश्रान्ति दिवस शनिवार है न कि रविवार। परन्तु सोचिए इसमें क्या अन्तर पड़ता है कि विश्रान्तिवार किसको माना जाए; कोई दिन भी विश्रान्ति दिवस माना जा सकता है यदि हम उस दिन केवल प्रभु-कार्य में ही

लगे रहें। इसलिए जब हम अनेकानेक मत-मतान्तरों के उपदेशों पर दृष्टि डालते हैं, तो हमें उनपर वस्तुनिष्ठा की दृष्टि से उनके सार, मूल-वस्तु को देखना होगा, और इस प्रकार प्रभु के पाने के प्रयास में उनका मूल्यांकन करना होगा।

क्या चीज है जो हमें प्रभु को जानने और यह समझने में बाधा डालती कि हम प्रभु-परमात्मा के ही प्रतिविम्ब-मात्र हैं? यदि हम एक कटोरे में पानी भरकर धूप में रखें तो हमें उस कटोरे के पानी में सूर्य्य का प्रतिविम्ब दिखाई पड़ेगा। परन्तु यदि हम एक छड़ी लेकर पानी को मथ देते हैं, तो हम उसी पानी में कोई सूर्य की छाया नहीं देख सकेंगे, क्योंकि विलोने से सूर्य्य का सही प्रतिविम्ब विकृत हो जाता है; इसी प्रकार हमारी अवबोधन शक्ति काया की विकारी तरंगों के कारण दूषित हो जाती, विगड़ जाती है, अतः वह विकारी तरंगें हमारे शरीर में संवेदनाएं, मन में विकृत विचार-शृंखला, तथा गहन भावमयता उत्पन्न कर देती है, जो कि हमारी चेतना को निरन्तर विक्षुब्ध और विकृत करती रहती है, जिसके कारण हम अपना वास्तविक स्वरूप नहीं देख पाते।

आत्मसाक्षात्कार पाने की चार प्रविधियाँ

बौद्धिक प्रविधि, जो कि समस्त मानव समाज पर लगती है, एक स्वभाविक अथवा प्रकृति पर आधारित प्रविधि है। विचार-विमर्श और तर्क के द्वारा ही मानव विकास की इस अवस्था तक अब तक पहुँचा है, इसी कारण यह पहली प्रविधि हमारे स्वभाव के अनुकूल है, और हम प्रभु तक पहुँचने के लिए इसी प्रविधि को अपनाने को प्रवृत्त रहते हैं। गहन एकाग्रचित्त सोच द्वारा हम इन्द्रिय ज्ञान से ऊपर उठ सकते हैं; हममें से कई लोगों ने संभवतः ऐसा अनुभव भी किया होगा, जैसे मानो हम कोई पुस्तक पढ़ रहें हैं जो हमें बहुत पसन्द है और हम उसे बड़े ध्यान से पढ़ रहे हैं, तो इस बीच टेलीफोन की घंटी हमें सुनाई नहीं देती। बौद्धिक प्रविधि से प्रभु तक पहुँचने के लिए हमें अपने विवेक

और अपनी विचारशक्ति को इस तरह नियंत्रण में रखना है कि हम अपने आपको यह स्मरण कराते रहें, "मैं यह शरीर नहीं हूँ जो परिवर्तनशील है, और अन्ततः नष्ट हो जाता है; मैं तो आत्मा हूँ; यह संसार मुझे प्रभावित नहीं कर सकता; मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ।" हमें निरन्तर अपनी विचार-शक्ति और अपने विवेक का प्रयोग सत्य अथवा परमात्मा के जानने में करते रहना चाहिए। इस प्रविधि में एक समस्या खड़ी हो जाती है, कि परमात्मा तक पहुँचने के लिए बौद्धिक प्रविधि का प्रयोग एक मन्दगति से सफलता की ओर ले जाता है।

भक्ति और निष्ठा पर आधारित प्रविधि को प्रयोग में लाने से तुरन्त परिणाम मिलना प्रारम्भ हो जाता है; निष्ठावान प्रक्रिया; जैसे प्रार्थना, भजन, और भक्ति-गीतों का आलाप करने से मन एक ही विन्दु पर केन्द्रित हो जाता है, और वह विन्दु है—प्रभु, परमात्मा। इस प्रकार मनुष्य का मन शारीरिक संवेगों से विमुक्त हो जाता है; इसके अतिरिक्त इन संवेगों से उत्पन्न मनोविकारों से भी छुटकारा पा जाता है। यह प्रविधि जन-साधारण के लिए अभ्यास में कुछ कठिन है, उन्होंने अपने मन में प्रभु के प्रति उतनी प्रज्वलन्त निष्ठा, उतना उत्साह और जोश नहीं पैदा कर लिया होता, जितना कि संत फ्रांसिस में था; इसी कारण ऐसे व्यक्तियों का मन निरन्तर विक्षिप्त और भ्रान्त रहता है।

यह दो उपरोक्त प्रविधियाँ नितान्त वैज्ञानिक हैं और इनका सफलता-पूर्वक अभ्यास और प्रयोग कर सकने से पहले मन को वोधेन्द्रिय से ऊपर उठाने का निरन्तर और कड़ा अभ्यास करना होगा। फिर भी इन दोनों प्रविधियों में कुछ अन्तर और भेद है। तीसरे प्रकार की प्रविधि से, जो कि ध्यान-चिन्तन पर आधारित है, मनुष्य अगाध शान्ति की अवस्था में सवोध रूप से प्रवेश करता है। जिसमें ज्ञानेन्द्रियां, ऐच्छिक नाड़ियाँ, तथा वाह्याचार अंग ऐसे शान्त और निश्चल होते हैं जैसे निद्रावस्था में, परन्तु आन्तरिक अंग (हृदय, फेफड़े, इत्यादि) नहीं। चौथी प्रविधि में, जिसमें प्राणायाम की प्रविधियाँ (जीवन-शक्ति का नियंत्रण) जैसे क्रियायोग, प्रयोग होती हैं, वोधेन्द्रियां, और आन्तरिक अंग भी शान्त हो जाते हैं।

शारीरिक चेतना की तरंगें जो हमें अपना वास्तविक स्वरूप नहीं पहचानने देतीं, भी शान्त हो जाती हैं, यह प्रविधि नितान्त, वैज्ञानिक है।

परिपूर्ण शान्ति की अवस्था

आप जानते हैं कि मानव में अनन्त जीवन, और चेतना का सर्वोच्च केन्द्र दिमाग में 'सहस्रदल' या 'हजार-पंखड़ियों' वाले 'कंवल फूल' में स्थित हैं। वहाँ से ही जीवन-शक्ति अथवा विद्युतशक्ति निम्न अथवा उपसहायक केन्द्रों में अवतरित होती है—वे हैं आज्ञाचक्र, विशुद्ध, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार, जो मेरुदण्ड में स्थित हैं, और वहाँ से आन्तरिक और वाह्य अंगों, वोधेन्द्रियों, और शरीर के सव अंगों में प्रसारित हो जाती है। यह छः केन्द्र आपस में अन्तर-सम्वन्धित हैं, और यह सव दिमाग में स्थित सर्वोच्च केन्द्र के निर्देशन में काम करते हैं। यह विद्युत-प्रवाह, परमहंस योगानन्द जी ने कहा है, जीव के प्राण हैं। समस्त संवेदनात्मक विवरण दिमाग तक विद्युत-प्रवाह के माध्यम से पहुँचकर विचार-प्रकिया को जन्म देते हैं।

यह स्पष्ट है कि यदि हम उस प्रवाह को वोधेन्द्रिय, पेशियों, आन्तरिक और वाह्य अंगों से हटाकर पुनः दिमाग के उच्चतर केन्द्रों की ओर मोड़ दें तो कोई परिस्थिति अथवा वस्तु भी हमारी शान्ति को भंग नहीं कर सकती। तव हम परिपूर्ण शान्ति की अवस्था में होंगे। हृदय और फेफड़े निश्चल और स्थिर हो जाएंगे, और मनुष्य उस अनुभूति को प्राप्त होगा, जिसका उल्लेख संत पॉल ने इस प्रकार किया है—"मैं क्राईस्ट के द्वारा प्रदत्त प्रसन्नता को दृढ़ करके यह कहता हूँ कि मैं नित्यप्रति मरण क्रिया का सामना करता हूँ।" (१ कोरिन्थियंस १५:३१) सेंट पॉल परमानन्द की परम अवस्था को प्राप्त हो चुका था, जो ध्यान-चिन्तन द्वारा उपलब्ध होती है, जव कि वोधेन्द्रियां, पेशियां, और आन्तरिक अंग सव पूर्णतया निश्चल हो जाते हैं। 'मृत्यु' की इस चेतनावस्था में शरीर की कोई सुधि नहीं रहती, संसार की ओर से मनुष्य विमुख हो जाता

है, और केवल प्रभु के परमानन्द की सुधि रहती है। यह है जो क्रिया-योग द्वारा प्राप्त होता है।

"इन उपदेशों (क्रियायोग) में यह विलक्षणता है," राजऋषि जनका-नन्द जो हमारे द्वितीय अध्यक्ष थे, ने कहा था, "कि इनको ग्रहण करने में मनुष्य को अंधविश्वास पर आश्रित नहीं होना पड़ता। दैवी जीवन अनुभूति इस प्रकार मनुष्य अपने मन में स्वयं पा जाता है; वह अपनी आत्मा का सार्वभौम आत्मा मे एकपन अथवा संयोग का अनुभव करता है; सेल्फ-रीयलाईजेशन पथ जो परमहंस योगानन्द जी ने दिखाया है, पूरी तरह यथार्थ और विज्ञानानुमोदित है। यह योगविद्या—एक प्रविधि जिसका अभ्यास मनुष्य अपने आप में करता है—और प्रभु-परमात्मा में निष्ठा, योग और प्रेम में निष्ठा दोनों के मिलने से मनुष्य को अपनी दिव्यता का ज्ञान हो जाएगा।"

क्रियायोग के अभ्यास के फलस्वरूप राजऋषि जनकानन्द एक प्रभु-साक्षात्कार-प्राप्त महानुभाव बन चुके थे। मैं उनसे मिला था, मैं उस भेंट को भुला नहीं सकता। जब मैंने उनकी ओर देखा, तो कितना प्रेम, कितनी शान्ति, कितनी प्रसन्नता उनके मुखारविन्द से टपक रही थी, सचमुच प्रचुर, अत्यधिक। जब मैं उनसे मिलने के पश्चात लौटा तो मेरे मन में केवल एक ही विचार था—"पता नहीं इस महापुरुष में क्या है, मैं यह नहीं जानता; परन्तु मैं भी उसे पाना चाहता हूँ।" हम भी पा सकते हैं, उसे—वह आनन्दमय दिव्य चेतना जो कि हमारी प्रकृति में है, हमारे स्वभाव का अंग है; परन्तु ऐसा पा सकने के लिए हमें इन प्रविधियों का अभ्यास करना होगा, और इन उपदेशों को अंगीकार करना होगा। तब हम जान जाएंगे कि क्रियायोग आत्मसाक्षात्कार की सबसे द्रुतग्राही प्रविधि है।

जब हम सर्वप्रथम इस मार्ग पर चलते हैं, प्रायः हममें से कोई भी सही तौर पर यह नहीं समझता कि इन उपदेशों से हमें क्या मिल सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि हम हताश हो जाते हैं और अभ्यास करना छोड़ देते हैं, परन्तु व्यक्ति जो अभ्यास निरन्तर करते चलते हैं, जो

ध्यान-चिन्तन की इन प्रविधियों का सत्यनिष्ठा से और श्रद्धापूर्वक अभ्यास करते रहते हैं, और अपने आपसे यह कहते हैं, "परवाह नहीं कि चाहे कितना समय लगे, मैं अभ्यास करता रहूँगा।" वे भक्त शनैः शनैः उत्तरोत्तर आगे बढ़ते जाते हैं। हममें से जिन व्यक्तियों को आप लोगों से जो इन प्रविधियों का अभ्यास करते हैं, मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता है, आप में हो रहे परिवर्तनों को भलीभाँति देख सकते हैं; क्योंकि क्रिया-योग की प्रविधि एक यथार्थ और विज्ञानानुमोदित प्रविधि है, तज्जनित परिणाम अवश्यम्भावी हैं। जैसे लाहिड़ी महाशय जी ने कहा है, "इसकी (क्रियायोग की) शक्ति अभ्यास द्वारा ही उत्पन्न होती है।"

क्रियायोग की अत्यधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके लाभ सब मनुष्यों को उपलब्ध हो सकते हैं, न कि केवल उन एकान्तवासी सन्यासियों या विरागियों को ही, जो संसार से विरक्त हो चुके हैं। लाहिड़ी महाशय जो एक कारोबारी, बाल-बच्चेदार गृहस्थ थे, को महावतार बाबा जी ने बताया था, "तुम्हें अनगिनत आसक्तचित्त, गम्भीर प्रभु का दर्शन पाने के इच्छुकजनों को क्रियायोग द्वारा आश्वासन का संदेश पहुँचाने के लिए चुना गया है। लाखों मनुष्य जो कि कुटुम्ब-परिवार के बन्धनों से भारग्रस्त हैं, तुम्हारे उदाहरण से एक नयी सांत्वना पा सकेंगे, क्योंकि आप भी उनकी तरह एक गृहस्थ हो। तुम उन्हें यह समझाओ कि योगाभ्यास की उत्कृष्ट उपलब्धियाँ एक गृहस्थ की पहुँच से बाहर नहीं हैं। संसार में लाखों आदमी जो सांसारिक बन्धनों और अपनी जिम्मे-दारियों से भयाक्रान्त हैं तुम्हारे उदाहरण से उत्साहित हो जाएंगे क्योंकि तुम भी उनकी तरह सांसारिक जिम्मेदारियों वाले एक गृहस्थ हो। संसार में रहकर भी एक योगी अपनी जिम्मेदारियों को पूरी तरह निभाता है, पर उनमें व्यक्तिगत रूप से लिप्त न होकर, ज्ञान और प्रबोधन के विश्वसनीय मार्ग, सच्चे रास्ते पर चलता रहता है।" ऐसे संसारी लोगों के लिए कितना अद्भुत आश्वासन और भरोसा है यह।

निःसन्देह ही, क्रियायोग जैसी सूक्ष्म प्रविधि की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इस प्रविधि का अभ्यास करने वाला व्यक्ति एक

संतुलित जीवन जी रहा है। यदि हम ऐसा नहीं कर सके, तो हमारा प्रयास उस आदमी की कोशिश के सदृश है जो छलनी में पानी भरना चाहता है; दिव्य चेतना का जल ऐसी अवस्था में कभी इकट्ठा नहीं हो सकेगा। यदि हम आध्यात्मिक पथ पर सफलीभूत होना चाहते हैं तो हमें अपने जीवन को अनुशासन में लाना होगा। ऐसा करना हमारी इस प्रविधि का अंग है। यह तो ठीक है कि संसार में जिन्दा रहने के लिए इन्द्रियों को व्यवहार में लाना आवश्यक है। परन्तु हमें जीवन की अच्छी वस्तुओं को त्यागना नहीं होगा; इन्द्रियों का दुरुपयोग न करना ही कुंजी है। बड़े बड़े योगियों ने अपने भक्तों को इन्द्रियों के प्रयोग में संयम बरतने का परामर्श दिया करते हैं।

जब आप अपना जीवन संयत रूप से संतुलनमय व्यतीत करेंगे, जैसा कि हमारे गुरुदेव का निर्देश है, और जब क्रियायोग का अभ्यास करते जाएंगे, आपको अपने जीवन पर अधिकाधिक नियंत्रण प्राप्त होता जाएगा। जब भी आप किसी कारण-वश मन में अच्छा नहीं महसूस कर रहे हों,—सम्भवतः आपका मन उद्विग्न हो, या आप कुछ निरुत्साहित और खिन्न हों, आप अपने आपको शान्त कर सकते हैं, आप हंसः प्रविधि का अभ्यास कीजिए, और फिर गहराई से कुछ क्रियाओं का अभ्यास कीजिये।* आप अनुभव करेंगे कि आपकी चेतना में अभीष्ट और समुन्नतिशील परिवर्तन आ जाएगा; एक ही क्रिया कर चुकने के पश्चात, आप जो एक मिनट पहले थे, अब नहीं रहेंगे, आपका व्यक्तित्व बदल जाएगा। यह है क्रिया का महत्व।

परमात्मा और गुरु का आशीर्वाद

क्रिया की प्रविधि में प्रभु-परमात्मा और योगदा सत्संग सोसाईटी के गुरुओं का आशीर्वाद निहित है—यदि आपको दीक्षा किसी अधिकृत माध्यम

*यह प्रविधि योगदा सत्संग की पाठमाला द्वारा सिखाई जाती है। क्रियायोग की दीक्षा उन भक्तों को उपलब्ध कराई जाती है, जिन्होंने प्रारम्भिक अध्ययन और ध्यान-चिन्तन का क्रम पूरा कर लिया हो। (प्रकाशक की टिप्पणी)

द्वारा प्राप्त हुई है। जो व्यक्ति क्रिया दीक्षा स्वयंनियुक्त व्यक्तियों द्वारा ग्रहण करते हैं वे गुरु के आशीर्वाद से वंचित रह जाते हैं, जो कि क्रियायोग के अभ्यास का एक प्रमुख पक्ष है। यह एक आध्यात्मिक नियम है जो एक महान तिब्बती योगी, मिलरप्पा के जीवन द्वारा सार्थक सिद्ध होता है।

क्योंकि मिलरप्पा ने कई निकृष्ट काम जादू-टोने की पद्धति का अभ्यास कर अपने प्रारम्भिक जीवन में किए थे, उसके गुरु ने उसको अनुशासन सिखाने के लिए कई कड़ी परिस्थितियाँ उसके सम्मुख उपस्थित की थीं। कई अन्य यातनाओं के अतिरिक्त मिलरप्पा को किसी एक जगह पत्थर से घर बनाने का निर्देश और (जब घर बनकर तैयार हो गया) फिर उसे गिरा देने को कहा; ऐसा आदेश—बनाना और गिराना—कई बार दिया; इसके अतिरिक्त जब जब मिलरप्पा ने उच्चतम ध्यान-चिन्तन की प्रविधियों की दीक्षा के लिए अपने गुरु से प्रार्थना की, गुरु ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। गुरु का मिलरप्पा के तांईं यह बड़ा कठोर रवैय्या था। परन्तु मिलरप्पा के हित में यही था कि इस तरह वह अपने बुरे कर्म पूरे करें।

परन्तु गुरु की पत्नी ने मिलरप्पा पर तरस खाया, यह सोचकर कि "मेरे पति यह समझ नहीं रहे हैं कि मिलरप्पा कितना योग्य और सुपात्र शिष्य है; संभवतः यह मेरे पति के शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ है," गुरु की पत्नि ने ऐसी व्यवस्था की कि मिलरप्पा को एक और उन्नत शिष्य द्वारा गुरु की अनुमति या जानकारी के बिना, दीक्षा मिल गई। गुरु की पत्नि ने एक पत्र लिखा उस शिष्य के नाम, और उस पत्र के साथ गुरु की कुछ निशानी भी साथ भेजी ताकि उस पत्र की प्रमाणिकता सिद्ध हो सके और वह शिष्य यह सोचे कि यह उसके गुरु की ओर से एक प्रामाणिक अनुरोध था।

समय बीतता गया; मिलरप्पा को उस अनुभूति की प्राप्ति नहीं हो रही थी जो इस प्रविधि के अभ्यास करने से उसको प्राप्त होनी चाहिए थी, यदि यह दीक्षा उसको गुरु की अनुमति से मिली होती। उस शिष्य

को जिसने मिलरप्पा को यह प्रविधि सिखलाई थी, कुछ शक होना शुरु हो गया; फिर उसको गुरु का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने मिलरप्पा को एक 'दुरात्मा' और 'पापी' कहकर पुकारा था, वह शिष्य मिलरप्पा के पास गया और उसको पूछा, "गुरु के पत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने दीक्षा पाने के लिए उनसे अनुमति नहीं ली थी।"

मिलरप्पा ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया, और कहा, "मेरे गुरु ने सीधे कोई अनुमति नहीं दी है, परन्तु उनकी पत्नि ने मुझे आपके लिए पत्र और प्रमाण-चिह्न भी दिए थे।" उसके दीक्षक ने कहा, अच्छा तो हम व्यर्थ काम करते रहे हैं। तुम्हें पता ही है कि विना गुरु के अनुमोदन के आध्यात्मिक उन्नति की आशा करना व्यर्थ है; तो यही कारण है कि तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति 'न' के बराबर है।

तत्पश्चात, मिलरप्पा को अपने गुरु से दीक्षा प्राप्त हुई, और वह समय पाकर एक महान योगी के रूप में प्रख्यात हुआ। सो हम जानते हैं कि गुरु का आशीर्वाद अत्यावश्यक है, सबसे ऊपर, सबसे पहले।

गुरु का आशीर्वाद ही सच्चा आध्यात्मिक धर्माभिषेक है, हमारी चेतना दिव्य विद्युत के प्रवाह में पूरी तरह निमग्न हो जाती है। पानी द्वारा बपतिस्मा शरीर को और किसी हद तक मन को भी परिशुद्ध करता है। परन्तु आन्तरिक आध्यात्मिक बपतिस्मा चेतना को परिशुद्ध बना देता है, इतना शुद्ध कि वह दिव्यानुभूति ग्रहण करने योग्य बन जाती है। जॉन बैप्टिस्ट ने कहा है, "जो मेरे पश्चात पधार रहे हैं, मुझसे कहीं बढ़कर हैं—वह आपको प्रभु-चेतना का बपतिस्मा देंगे, और अग्नि से भी।" (मैथ्यू ३:११) यह अग्नि क्या है? ऊर्जा या शक्ति; क्योंकि तमोयुग की शब्दावलि में 'ऊर्जा' कोई शब्द नहीं था; इसलिए अग्नि शब्द का प्रयोग किया गया है, और अन्य प्रकार के शब्द इसी आशय के अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। जब हम क्रियायोग की दीक्षा ग्रहण करते हैं, गुरु उस समय हमारे मस्तिष्क में वह दिव्य ज्योति और शक्ति प्रेषित करते हैं, ताकि हम अच्छी तरह क्रियायोग का अभ्यास कर सकें; जब हम इस प्रविधि का अभ्यास करते रहते हैं, हम आध्यात्मिक

'अग्नि को, (जीवनशक्ति को) अपने अन्तर में प्रविष्ट कर लेते हैं, उसको जीवन और चेतना की अतिसूक्ष्म प्रमस्तिष्क-मेरु नली में ऊपर-नीचे घुमा लेते हैं, जिससे दिमाग में समाए कर्म-फल नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार हमारा जीवन नकारात्मक प्रवृत्तियों, जो हमें प्रभु से दूर रखती हैं, को तिलाञ्जलि दे सकता है।

हममें से कुछ ऐसे भी व्यक्ति होंगे जो कि जब उनको क्रियायोग की दिव्य दीक्षा प्रदान की जाती है तो यह जान नहीं सकते कि उनपर प्रभु की कितनी कृपा की जा रही है; परन्तु चाहे हम पहचाने या न पहचाने, हम पर गुरु की अपार कृपा-वृष्टि की जा रही है, जैसे जैसे हम इस प्रविधि का अभ्यास करते जाते हैं हम गुरु की उत्तरोत्तर बढ़ती कृपा-के पात्र बनते जाते हैं। गुरुजी कहते थे कि मेरुदण्ड में इस संदर्भ में बहुत परिश्रम करना होगा। परन्तु जो व्यक्ति परिश्रम कर पाएंगे, वह अवश्य वांछित फल की प्राप्ति कर सकेंगे; "जो भक्त नियमबद्धता और निष्ठा से अभ्यास करते रहते हैं, अपने जीवन को परिष्कृत और परिवर्तित पाएंगे, अपनी दृढ़ती और स्थिरता से इस मार्ग का सच्चा अनुयायी अवश्यमेंव मोक्ष और मुक्ति को प्राप्त होगा। योगदा सत्संग के गुरुओं का आशीर्वाद इन प्रविधियों के अभ्यास में सन्निहित है। जो भक्तगण अपना जीवन योगदा सत्संग के सिद्धान्तों के आधार पर ढाल लेते हैं, उनको योगदा के महान गुरुओं का आशीर्वाद प्रोक्ष और प्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध हो जाता है।"

गुरु की सहायता का उदाहरण

पिछले सप्ताह किसी भक्त ने एस० आर० एफ० मुख्यालय को कनाडा से टेलीफोन किया; यह भक्त १६ वर्ष की आयु से ही एक बिजली कंम्पनी में इलेक्ट्रीकल इन्जीनियर के पद पर काम कर रहा था; अब उसकी आयु चालीस वर्ष की थी; वह कम्पनी अब बन्द हो गई थी, और इसकी नौकरी भी जाती रही। साल भर वह कोई और काम खोजता रहा, पर उसे कोई काम मिला नहीं; उसके परिवार में उसकी पत्नि और दो कॉलेज में पढ़ने वाले लड़के थे, और उसका कोई आर्थिक सहारा

न था; जो कुछ उसने अब तक जमा किया था, वह तो समाप्त होता जा रहा था; और वह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक निराश होता जा रहा था; आप समझ सकते हैं उस व्यक्ति के मन की अवस्था क्या थी।

अन्ततः एक दिन वह अपने घर में ध्यान-चिन्तन के कमरे में गया, यह दृढ़-संकल्प करके कि वह आज क्रियायोग का अभ्यास उस दृढ़ता और निष्ठा से करेगा जैसा उसने पहले कभी न किया होगा; कुछ समय में वह गहन चिन्तन की अवस्था में हो गया, और उसके मन में विपुल हर्ष और प्रसन्नता की लहर उमड़ रही थी उसकी इस मनःस्थिति में उसको ज्ञान हो गया कि यह संसार केवल एक दिव्य परिहास है, व्यंग्य है। इसके विषय में कोई विशेष चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। वह जान गया कि जीवन में सबसे बढ़कर श्रेष्ठ बात तो प्रभु का साक्षात्कार पाना है; अब उसके मन में प्रभु-सान्निध्य की अदम्य लालसा उत्पन्न हो गई।

प्रभु और गुरु के इतना निकट हो जाने पर उसने परमहंस जी से दिल खोलकर बातें कीं। उसने कहा, "गुरुदेव, मैं जानता हूँ कि जो मेरे साथ बीत रही है, वह मेरे अपने ही कर्मों का फल है, मैं यह मानता हूँ, परन्तु क्या आप मेरे परिवार पर कुछ दया-दृष्टि न करोगे? मैं अपनी गृहस्थी चलाने के लिए, अपने बाल-बच्चों के भरण-पोषण के लिए कुछ भी करने को तैयार हूँ; क्या आप मेरी सहायता करेंगे?

गुरुजी के साथ यह गहन अन्तरंग वार्तालाप के पश्चात उसका मन हल्का हो गया, वह ध्यान-कक्ष से उठकर सीढ़ियों से उतर कर अपने घर में गया, ज्योंही वह अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचा, तो टेलीफोन की घंटी बजी; यह टेलीफोन एक सरकारी अफसर कर रहे थे, जिन्होंने उस भक्त को कहा कि वह उसको करीब एक हजार कर्मचारियों का परिनिरीक्षक (supervisor) नियुक्त करते हैं, क्या उसे मंजूर है। उस भक्त ने फोन रख दिया और जोर से चिल्लाया, "गुरुदेव आपका धन्यवाद, बार-बार धन्यवाद।"

इस भक्त में निष्ठा थी, श्रद्धा थी; उसकी गुरुदेव और परमात्मा में आस्था थी, और प्रविधियों में विश्वास था। उसने हिम्मत नहीं हारी, जब कि सब ओर अंधियारा ही अंधियारा था। और उसने उस प्रेम

और आशीर्वाद को पा लिया जो एक शिष्य को गुरु से प्राप्त होता है। क्रियायोग के अभ्यास द्वारा गहन चिन्तन में उसने प्रभु और गुरु का साक्षात्कार कर यह जान लिया कि वह सर्वदा उसके साथ हैं। क्रिया-योग द्वारा हम सब भी यह सब कुछ पा सकते हैं। हममें से जो कोई भी श्रद्धा से निष्ठा से इस प्रविधि का अभ्यास करेगा, वह उस दिव्य प्रेम का आशीर्वाद पा लेगा। यदि अभी तक हमें वह आशीर्वाद प्राप्त नहीं हुआ है, तो हमें पहले से भी अधिक प्रयास और परिश्रम करना होगा। यदि हम अपने आपको इस पथ पर से पथ-भ्रष्ट न होने दें, चाहे कुछ भी हो जाए, तो हम इसी जन्म में प्रभु का सान्निध्य पा जाएंगे।

प्रतिदिन दूसरों की सहायतार्थ कुछ अच्छाई कीजिये, भले ही यह अत्यल्प मात्रा में हो। यदि आप भगवान से प्रेम करना चाहते हैं तो आपको लोगों से प्रेम अवश्य करना होगा। वे उसके बच्चे हैं। भौतिक रूप से आप दीन-दरिद्र को कुछ देकर सहायक हो सकते हैं, मानसिक रूप में दुःखियों को आराम पहुँचा कर, भयभीत मनुष्यों को साहस देकर और निर्बलों को अलौकिक मित्रता तथा चरित्र बल देकर सहायता कर सकते हैं, जब आप दूसरों की भगवान में रुचि उत्पन्न करते हैं और उनमें भगवान के प्रति अधिक प्रेम, अधिक विश्वास बढ़ाते हैं। जब आप इस संसार को छोड़कर जाओगे, तो सांसारिक धन पीछे रह जाएगा परन्तु प्रत्येक पुण्य कार्य जो आपने किया है, आपके साथ जाएगा। धनी लोग जो कंजूसी में रहते हैं और स्वार्थी मनुष्य जो कभी भी दूसरों की सहायता नहीं करते, अपने भविष्य जन्म में धन को आकर्षित नहीं करते। परन्तु वे लोग जो दूसरों को बाँटकर देते हैं, चाहे उनके पास अधिक हो अथवा कम, समृद्धि का आकर्षण करते हैं, ऐसा भगवान का नियम है।

—श्री श्री परमहंस योगानन्द जी

उमर खय्याम की रुबाईयां
(Rubaiyat of Omar Khayyam)

एडवर्ड फिट्ज़जेराल्ड कृत अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित
परमहंस योगानन्द जी द्वारा आध्यात्मिक व्याख्या

(गताङ्क से आगे)

४३

The Grape that can with Logic absolute
The Two-and-Seventy jarring Sects confute:
The subtle Alchemist that in a Trice
Life's leaden Metal into Gold transmute.

शब्दावली—*The grape :* भगवत् साक्षात्कार का आनन्द और उस भगवत्सम्पर्क के फलस्वरूप आत्मसाक्षात्कार का अनुभव। *Logic absolute :* अन्तर्ज्ञान, आत्मा का सर्वज्ञता का गुण जिससे एक आत्मानुभवी मनुष्य की विवेक बुद्धि उत्पन्न होती है। *Jarring sects :* परस्पर विरोधी धर्मवैज्ञानिक शिक्षा। *Subtle alchemist :* भगवदीय चेतना जो सूक्ष्म रूप से परन्तु निश्चित तथा पूर्ण रूप से सांसारिक चेतना का ऐसे परिवर्तन कर देती है जैसे रसायन धातु की प्रकृति को बदल देते हैं। *In a trice :* समय, जो मनुष्य के उच्चतर चेतना की ओर साधारण धीमे विकास का नियन्त्रण करता है, की सीमाओं से परे। *Life's leaden metal :* गहरी परेशानियों से भरा दैनिक नीरस जीवन। *Gold :* सच्चा स्थायी सुख।

आध्यात्मिक व्याख्या

नित्य-नूतन-आनन्द तथा भगवत्सम्पर्क-जनित आत्मानुभूति नवजागृत जीव को उत्कृष्ट बुद्धि और अन्तर्ज्ञान से परिपूर्ण विवेक प्रदान करते हैं जिनके द्वारा वह सत्य की पहचान कर सकता है तथा भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों की परस्पर-विरोधी धार्मिक शिक्षाओं से प्रादुर्भूत सभी आन्तरिक आशंकाओं का समाधान कर सकता है। अपने अलौकिक आनन्द के सहित यह भगवदीय चेतना ही वह सूक्ष्म रसायनकार है जो तुरन्त ही नीरस सांसारिक जीवनरूपी मूल सीसा धातु को अनन्त आनन्द रुपी उद्दीप्त सोने में परिवर्तित कर देता है।

व्यवहारिक उपयोगिता

इस चतुष्पदी श्लोक में खय्याम पुनः स्पष्टरूप से दर्शाते हैं कि उनके दर्शन में अङ्गूर अथवा शराव का अर्थ सांकेतिक है। शब्दानुवाद के अनुसार कोई भी अङ्गूर अथवा मद्यपान भिन्न-भिन्न धर्मविज्ञानों की विरोधिता का समाधान नहीं कर सकते।

केवल आत्मानुभूति ही सत्य से सम्बन्धित सभी प्रश्नों का समाधान कर सकती है, क्योंकि यह सीमित विचारशक्ति (बुद्धि) से ऊपर उठकर प्रत्यक्षानुभव का प्रमाण उपलब्ध करती है। यह केवल ज्ञान ही नहीं लाती अपितु शान्त मनोवृत्ति का आनन्द भी प्रदान करती है। यह मानसिक संतुलन जब नियमित गहरे ध्यान की प्रविधि द्वारा वनाए रखा जाता है तो वह दैनिक जीवन की नीरसता, निराशा तथा शोक को दूर कर देता है तथा उनके स्थान पर इसे आत्मा का एक अति रोचक और आनन्दकर अनुभव वना देता है।

परमहंस योगानन्द जी के बोध-वचन
(Wisdom of Paramahansa Yogananda)

लोगों को केवल इतना बताना ही पर्याप्त नहीं है कि वें भगवान से प्रेम करें; उन्हें यह भी बताना चाहिये कि वे उससे प्रेम क्यों करें। भगवान स्वयं प्रेम स्वरूप हैं। एक बच्चा जानता है कि प्रेम क्या है क्योंकि वह अपने माता-पिता की ओर निष्ठावान है। माता-पिता जानते हैं कि प्रेम क्या है क्योंकि वे बच्चे से प्रेम करते हैं। वे इस प्रेम को अनुभव नहीं करेंगे यदि भगवान ने उनमें इस प्रेम का आरोपण न किया हो। जब भी आप एकान्तवास प्राप्त कर सकें अथवा जब भी आपके पास थोड़ा समय खाली हो, भगवान से मानसिक वार्तालाप करने की आदत बनाएं। उसे बता दीजिये, "प्रभो, मैं जानता हूँ आप प्रेम हैं : आपही मेरे हृदय का प्रेम हैं; जो प्रेम मुझे पिता, माता, मित्र और प्रेमिका से प्राप्त होता है और सभी सांसारिक प्रेम समाप्त हो जाने के बाद जो प्रेम प्राप्त होता है वह भी आप ही हैं। आप वह प्रेम हैं जो सदैव मेरे साथ रहेगा।

वह व्यक्ति जो हर समय दूसरों को बताता रहता है कि वह महान है, महान नहीं है, वह यह सोचने में अति व्यस्त रहता है कि वह महान है। वे लोग जो सचमुच बड़े हैं, अच्छे कार्य करने में इतने व्यस्त हैं कि उनके पास अपनी महानता के प्रति कहने अथवा सोचने के लिए समय ही नहीं है।

सभी प्रकार की गरीबी में अज्ञानता सबसे बढ़कर है।

आप फूलों से प्रेम करते होंगे परन्तु यदि आप उनसे इस प्रकार प्रेम करना सीख लें जिस प्रकार मैं करता हूँ तो आप अपनी चेतना को विस्तार करते पाओगे। प्रकृति में फूल सबसे अधिक भगवान के प्रति हमें कहते हैं। वे हमें बताते हैं कि भगवान ठीक यहाँ हैं। भगवान अदृश्य हैं परन्तु वे हमारे पास फूलों के भेस में आते हैं ताकि हम उन्हें जान सकें। प्रकृति के मंच पर हमारे मन को लुभाने के लिए वे फूलों की नई पोशाकों में लगातार प्रकट होते हैं। फूलों के माध्यम से वे हमें अपने प्रतिदिन के अस्तित्व के प्रति बता रहे हैं: "देखिये, मैं आपसे फूल के माध्यम से बात कर रहा हूँ।"

एक फूल भगवान की मुस्कान है। सुगन्धि ही उसकी गुप्त उपस्थिति है। मैं उसके जीवन को पत्तों और तने में बहता देखता हूँ। प्रत्येक फूल मंजरी भगवान की कृति है। वह एक निपुण चित्रकार है और मैं प्रत्येक खिल रही पंखड़ी में उसकी अनन्त सुन्दरता फैलते हुए देखता हूँ। फूलों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं होती जब तक मैं उनमें भगवान की अनन्त सुगन्धि और सुन्दरता का आभास नहीं पाता। कभी-कभी जब मैं फूलों को देखता हूँ तो मैं पूर्णरुपेण समाधि में चला जाता हूँ और उनके बनाने वाले को उनके बीच में मेरी ओर देखते हुए अनुभव करता हूँ। प्रायः जब मैं ऐसी अवस्था में होता हूँ तो मेरे लिए फूल तोड़ना असम्भव होता है। तथापि वे दूसरे के आनन्द के लिए अपने आपको समर्पण करने में कोई आपत्ति नहीं समझते। जो उनसे प्रेम करते हैं उन्हें वे भी वैसी प्रतिक्रिया दिखाते हैं। एक अच्छी सेवा करते समय वे प्रसन्न रहते हैं; और वे अपनी सुन्दरता से, जो हर समय भगवान के प्रति कहती रहती है, सबकी सेवा करना चाहते हैं। एक मन्दिर अथवा वेदी को सजाते समय वे वहाँ केवल सजावट के लिए ही नहीं हैं परन्तु भगवान की उपस्थिति की घोषणा करने के लिए भी हैं।

प्रत्येक फूल एक मन्दिर है जिसमें मुझे भगवान का दर्शन प्राप्त होता है।

मेरा ठौर-ठिकाना
(Where I Am)

श्री श्री परमहंस योगानन्द जी

भव्य, उत्तुंग अटालिका वाले
भवनों में न वासा मेरा।
न ही वसूं मैं
चमकीले, सुन्दर कक्षों में।
अरगन वाजे की विस्मयकर कम्पन
न पहुँच सके मेरे तक
इन्द्रधनुष रंग-रंजित द्वारी
जो करती चित्रित पूर्वकालीन इतिहास हमारा
न ही धूप-दीप की कुंतल बात
दीपशिखा की ज्योति निश्चल
जान सकें न मेरा ठौर-ठिकाना
गिरजाघर का श्वेतांवरधारी गायकदल
प्रभावशाली व्याख्यान अनूठा
उन्नत ऊँचे स्वर में मेरी
सार न जाने किंचित
धनवानों के गर्वी आडम्बर
लगें न अच्छे मुझको

क्यों, जो मैं विचरूं
अज्ञता, गुप्त रूप में
संगमरमर की वेदी शोभित
ऊँची उपदेशक की चौकी
समा न सके वह
वृहत आकार को मेरे

एक आकर्षक आह्वान
स्वच्छ स्रोत की कलरव कलकल
नन्हीं सी वनस्पति वेदी
विश्राम करूँ मैं उस पावन
जीर्ण पुण्य भूमि में।
एक अज्ञात स्थली, विना देख-रेख के
बसूं मैं सुप्रसन्न उसमें विनम्रभाव से मैं

पश्चाताप से अनुतप्त
अश्रु जल से धोया
पावन मन थाह पाए मेरी
करूं न चिन्ता किसी प्रलोभन की
धन-संपदा, शक्ति चाहे
जाति, धर्म, बुद्धि के बल पर
ख्याति, प्रतिष्ठा अथवा हर्षोल्लास
चाहे करें पुकार।
हाँ, सत्यथता का क्रन्दन
और दुःखी हृदय का विलाप सुन
पहुँचूं मैं तत्काल वहाँ,
चाहे उसका हो न विश्वास प्रभु पर
मै करूँ सहायता उसकी, चुपचाप।

विजय-प्राप्ति
(Winning)

श्री श्री परमहंस योगानन्द जी

संसार को जीत सकने की एक प्रविधि है—प्रकृति को वश में करने की, जीवन पर विजय पाने की, जब कि जीवन में दरिद्रता, रोग, युद्ध-संग्राम तथा अन्य व्याधियाँ भरी पड़ी हैं। हमें इन सबके चलते भी विजय प्राप्त करनी है। बड़े बड़े योद्धा जैसे नैपोलियन, चंगेज खान, और विलियम दी कांक्रर बड़े विस्तृत भूभाग को अपने वश में कर सके थे। परन्तु फिर भी उनकी विजय अस्थायी थी, नितान्त कुछ समय के लिए। जो विजय जीसस क्राईस्ट ने प्राप्त की, वह चिरस्थायी और पक्की है। ऐसी विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है? इसके लिए आपको सर्वप्रथम अपने आपको जीतना होगा। आप शायद निराश होकर यह कह रहे हों कि संसार में से घृणा और वैमनस्य को निकाल फेंकना और उसके स्थान पर मनुष्यों के मन में क्राईस्ट जैसे सद्गुणों को स्थापित करना एक असंभव-सा प्रयास है। परन्तु इन सबकी कभी इससे पहले इतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी आजकल। नास्तिकता बड़े जोर-शोर से सत्य धर्म को पछाड़ने में लगी है। संसार बड़ी तेजी से इस उच्छृंखलता के नाटक में आगे-आगे बढ़ रहा है। इस प्रलय को रोकने के प्रयास में हम अपने आपको एक तुच्छ चींटी के समान पाते हैं, जो कि समुद्र तल पर तैर रही हो। परन्तु मेरा अनुरोध है कि आप अपनी शक्ति को तुच्छ नहीं जानिए। वास्तविक विजय तो अपने आपको जीतने में है। जैसे जीसस क्राईस्ट कर सके थे। और ऐसा कर सकने में उन्होंने सब प्रकृति पर विजय पा ली।

आईये हम सीखें कि विजय प्राप्त करने की मनोवैज्ञानिक प्रविधि क्या है। कई लोग कहते हैं कि हमें कभी भी अपनी असफलताओं का उल्लेख नहीं करना चाहिए। परन्तु अकेले ऐसा न करने से कुछ होने का नहीं है।

सर्वप्रथम अपनी असफलता और उसके कारणों का विश्लेषण कीजिए। पहले के अनुभवों से लाभ उठाईये, और तत्पश्चात उसको मन से निकाल दें। एक मनुष्य जो चाहे बार-बार अपने प्रयास में असफल होता है परन्तु जो अपनी कोशिश जारी रखता है, जो मन से अपने आपको असफल नहीं मानता, वह वास्तव में एक विजेता है। इसकी कोई चिन्ता नहीं कि संसार उसे असफल व्यक्ति कहता रहे, प्रभु उसको कभी ऐसा नहीं मानते। सत्य प्रभु के साथ प्राप्त अनुभूति के कारण मुझे पता लगा है।

यदि आपकी आपदाएं अधिक हैं, तो आपको उसी अनुपात में प्रभु को यह दर्शाने के लिए कि आप एक आध्यात्मिक नेपोलियन अथवा चंगेज खान हैं, अधिक संयोग भी प्राप्त है। हमारे अपने अन्दर, मन में, अनेकानेक त्रुटियां हैं जिनको हमें सुधारना है; जो व्यक्ति अपने आप पर काबू पा लेता है, वही वास्तव में विजेता कहलाता है। आपको भी वही करते रहना चाहिए—इसका प्रयास करना चाहिए—जो मैं किया करता हूँ वही आप करें—अपने मन पर निरन्तर काबू पाने का प्रयास करते जाना। ऐसा कर सकने के कारण सारा संसार आपके कहे पर चलेगा। जो भी जीवन आपसे आशा रखता है, उसे मन से अपनी शक्ति के अनुसार, अच्छी तरह से पूरा करें। विवेक से, ठीक-ठीक कार्य-विधि अपनाने से, जो भी बाधाएं आपके रास्ते में आएं, उनपर विजय प्राप्त करें और आत्मसंयम सीखें।

प्रभु से निर्धारित कोई भी कार्य—प्रिय हो अथवा अप्रिय—कर्तव्य कर्म है। जो साधक प्रभु-खोज में लगा है, वह दोनों ही प्रकार के कार्यों को एक जैसी तत्परता और लगन से करता है।

—भगवद्-गीता

हिन्दू धर्म : चुनौती और उत्तर
(Hinduism : Challenge and Response)

डा० कर्ण सिंह*

डॉ० करण सिंह अनेक काव्य पुस्तकों के लेखक हैं तथा दर्शन और राजनैतिक विज्ञान पर अनेक लेख लिख चुके हैं।

हिन्दू धर्म आज एक बार फिर अपने पुनर्जागरण काल में है। जीववाद से लेकर वेदान्त तथा रहस्यवाद के उच्चतम सभी प्रकार के धार्मिक अनुभवों के समुच्चय वास्तविक प्रतिनिधि के रूप में यह जीवन के हजारों वर्षों के सम्पूर्ण दृष्टिक्षेत्र को उपलब्ध कराता है और आश्चर्यजनक चुनौतियों तथा आक्रमणों का सामना करने पर भी जीवित है। यद्यपि यह संसार के प्राचीनतम धर्मों में से है, तथापि यह किसी भी दूसरे धर्म के समान शक्तिशाली है और वर्तमान अणुयुग की आवश्यकताओं के अनुरूप आसानी से ढलने योग्य है। गत शताब्दी में बहुत से महान सन्तों ने अपनी शक्तिशाली नई व्याख्याओं द्वारा हिन्दूधर्म को नये प्रकाश तथा शक्ति से ओत-प्रोत कर दिया है। हिन्दूधर्म का सन्देश भारत की सीमाओं से बहुत दूर तक फैल गया है; पूर्व की ओर अधिक नहीं, जैसा कि प्राचीनकाल में होता था, परन्तु पिछले कुछ वर्षों में अधिक मात्रा में सर्वसम्पन्न पाश्चात्य देशों की ओर—जो सुख और शान्ति की नई खोज में हैं।

आधुनिक विज्ञान और टेक्नॉलोजी के अभिघातक प्रभाव से पुरातन समाप्त हो रहा है और नवीन जन्म लेने के लिए संघर्ष कर रहा है। मानव भूत और भविष्य के बीच अस्थिर रूप से टिका हुआ है। समकालीन संसार में आध्यात्मिक मूल्यों का निर्णायिक महत्त्व है—यदि मानव-

जाति को अपने इस बुद्धि कौशल से जीवित बचा रहना हो तो। यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि वर्तमान सन्दर्भ में हिन्दूधर्म अपनी पूर्णता को सुरक्षित रखने तथा इसके साथ-साथ आधुनिक युगप्रवृत्ति की गहनतम आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने में कहाँ तक सक्षम होगा। क्योंकि जब कोई धर्म इन दोनों वस्तुओं को कर सकता है तभी वह वास्तविकता में अपने अस्तित्व को सिद्ध कर सकता है। आज का संसार घोर पीड़ा में हैं, मानो एक नए 'जन्म की प्रसव-पीड़ा का अनुभव कर रहा हो जो मानव इतिहास तथा चेतना का एक बड़ा परिवर्तन है। हिन्दूधर्म प्रत्येक मानव में अन्तर्निहित देवत्त्व तथा सम्पूर्ण जीवन की अन्तिम एकता में अपने उज्ज्वल विश्वास से मानवजाति के लिए सत्य की खोज तथा मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में बहूमूल्य सिद्ध हो सकता है।

वैदिक काल से लेकर इस धर्म ने, जो अब हिन्दूधर्म कहा जाता है, भारत के भाग्य में एक निर्णायक भूमिका निभाई है। सभ्यता की एकता और पूरे महाद्वीप में उसका प्रवाह उपलब्ध करने से वह भारत के अस्तित्व को जीवित रखने में अधिकाँश जिम्मेदार रहा, चाहे शताब्दियों तक विदेशी राज्य रहा और आश्चर्यजनक राजनैतिक विभाजन होते रहे। बहुत सी धूप एवं छाया तथा सफलता एवं दुःखद घटनाओं के प्रत्यावर्तनों के बाद, आज हिन्दूधर्म फिर से जाग्रत हो रहा है।

मानव की शिल्पवैज्ञानिक क्षमता ने अब सबकी बुद्धि को पछाड़ दिया है, यहाँ तक कि एक आण्विक बटन को एक बार दबाने से मानव के अस्तित्व को ही संकट में डाला जा सकता है। मानव की इस जानकारी और बुद्धि के बीच की खाई के लगातार बढ़ते रहने से हिन्दूधर्म की जाग्रति का एक विशेष महत्त्व हो जाता है। क्योंकि यह ग्रन्थों अथवा सिद्धान्तों पर निर्भर न होकर सीधे आध्यात्मिक अनुभूति पर आधारित है और किसी कड़ी पौरोहित्य कर्मसम्बन्धी संरचना से रहित है, अतः यह सदैव ही रचनात्मक व्याख्या के लिए खुला रहा है। क्राईस्ट के जन्म से हजारों वर्ष पूर्व, वैदिक काल से लेकर ठीक वर्तमान शताब्दी तक परिवर्तनशील माँगों तथा समय की मजबूरियों का सामना करने के

लिए हिन्दूधर्म की अनेक व्याख्याएं की गई हैं। यह एक सुन्दर प्रक्रिया थी जिसके द्वारा विशिष्ट पुरुषों तथा स्त्रियों ने केवल अपने व्यक्तित्व और आध्यात्मिक महानता के बल से, किसी शासन के संरक्षण अथवा शक्ति की सहायता के विना, लाखों मनुष्यों के जीवन और कार्य्य को प्रभावित किया। इन महानुभावों ने, जो जीवन के सभी क्षेत्रों और समाज के सभी वर्गों से आये थे, युगों तक, न केवल हिन्दूधर्म के आधारभूत सिद्धान्तों को जीवित रखा बल्कि उत्तरवर्ती पीढ़ियों के लिए उनकी व्याख्याओं द्वारा इस धर्म को बराबर सम्बद्धता एवं सार्थकता की अवस्था में बनाए रखा।

यह सत्य और सम्भवतः अनिवार्य है कि इस धर्म के पाँच हजार वर्ष के इतिहास में कई एक अवांछनीय एवं आपत्तिजनक प्रथाओं ने इसकी छाया में शरण ले ली हो। जब अरबों लोगों ने किसी धर्म की व्याख्या की हो तो उनके सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे की कमजोरियाँ अवश्य ही विभिन्न धर्मप्राय कुप्रथाओं एवं रिवाजों के रूप में प्रकट होंगी। तथापि इन सभी बुराइयों के लिए हिन्दूधर्म को दोषी ठहराना अन्यायपूर्ण होगा। दूसरी ओर इसके विपरीत यह दावा किया जा सकता है कि भारत के इतने बड़े जनसमूह में इतने लम्बे समय तक संसक्ति बनाए रखने, और एक महान सभ्यता को उसकी कला, संस्कृति और दर्शन की महानतम उपलब्धियों के साथ जन्म देने का श्रेय भारत के लोगों पर हिन्दूधर्म के गहरे प्रभाव को ही है। जो हो, मेरे विचार में पाँच ऐसी आधारभूत धारणाएं हैं जो इस महान धर्म का सार हैं। वे हैं :

मानवजाति की एकता

ऋग्वेद की धारणा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सारा संसार एक ही परिवार है) अब यथार्थ सिद्ध होती जा रही है। पराध्वनिक गति की यात्रा और सार्वभौम दूरसंचार एवं अन्तरिक्ष औद्योगिकी के अद्वितीय विकास से संसार सिकुड़ कर हमारी आँखों के सामने आ रहा है और हमारे

ऋषियों की धारणा, जो उन्हें अन्तर्प्रेरणा के क्षण में उपलब्ध हुई थी, अब सारे संसार पर लागु होने लगी है। मानव की विध्वंसक क्षमता और उसके रचनात्मक सहयोग की क्षमता के बीच की बढ़ती हुई दूरी ने हमारे स्थायी अस्तित्व को गम्भीर खटका प्रस्तुत कर दिया है और जब तक हम जाति, राष्ट्रीयता, राजनैतिक विचारधारा और धार्मिक सम्प्रदाय के सभी विभाजनों को हटाकर, सम्पूर्ण मानव समाज को एक परिवार के रूप में नहीं देखते, तब तक मनुष्यजाति का अधिक समय तक जीवित रहना सम्भव नहीं हो पायेगा।

मानव का देवत्व

उपनिषदों में मानवजाति के लिए बड़ा अद्भुत नाम है : 'अमृतस्य पुत्राः' (अमरत्व की सन्तान)। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य जिसने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है, चाहे उसका देश और धर्म कोई भी है, उस ईश्वर का अंश है जो समस्त विश्व के भीतर और बाहर व्याप्त है। इस दृष्टिकोण से मनुष्य केवल अणुओं का आकस्मिक संघात ही नहीं है बल्कि उसमें ईश्वरीय तत्त्व भी है जिससे मानवीय गौरव का आनन्द और आध्यात्मिक विकास की सम्भावना उसका जन्मसिद्ध अधिकार बन जाते हैं। भगवान की ईश्वरता का उद्घोष ही अब पर्याप्त नहीं है। यदि भगवान है तो वह परिभाषा से ही ईश्वरीय है और उसकी ईश्वरता को दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं है। आज हमें मनुष्य के देवत्व की धारणा और उससे प्रादुर्भूत, कभी भी हस्तान्तरित न होने वाले गौरव और मानवीय व्यक्तित्व के अपरिवर्तनीय मूल्य की ओर आगे बढ़ना होगा।

सभी धर्मों की मूलभूत एकता

आवश्यकता है "एकता" की, सहनशीलता की नहीं, क्योंकि सहनशीलता एक नकारात्मक धारणा है जिसका अर्थ है किसी के अपने धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों के अस्तित्व के साथ अनिच्छित समझौता। यह

पर्याप्त नहीं है; आज जिस बात की आवश्यकता है वह है ऋग्वेदीय उक्ति : 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' (सत्य एक है, पण्डित इसे कई नामों से पुकारते हैं)। वास्तव में विचार यह है कि सभी धर्म एक लक्ष्य पर पहुँचने के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग हैं, न कि किसी धर्म का ही, जो धर्म-निर्पेक्षता का यथार्थ आधार है, अस्वीकरण। धर्म विशाल वैचारिक रूपरेखा तथा मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करते हैं जिसमें मनुष्य तथा ईश्वर के बीच सम्पर्क के शाश्वत रहस्य का विकास हो सकता है, और हिन्दूधर्म के दृष्टिकोण में भगवान की ओर ले जाने वाले सभी आन्दोलनों का सदा स्वीकार्य एवं स्वागत किया गया है। इस प्रकार देखने से धर्म संसार में, जो अभी भी सन्देह और घृणा से फटा हुआ है, एकता लाने वाली महानशक्ति बन सकता है, न कि लड़ाई-झगड़े का स्रोत, जैसा कि वह प्राचीन समय में प्रायः रहा है।

समाज का पुनर्निर्माण

हिन्दूधर्म इस बात को स्पष्ट कर देता है कि यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज की भलाई के लिए कार्य करे और उसे आत्मसाक्षात्कार के साथ सम्बद्ध करे। जब तक लाखों व्यक्ति भोजन, वस्त्र, निवास स्थान तथा शिक्षा से वञ्चित हैं, तब तक मानव के देवत्व की धारणाओं की कोई सम्बद्धता नहीं रहती। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि ऐसे व्यक्ति को, जिसके पास खाने या पहनने को कुछ नहीं है, धर्म का उपदेश देना पाप है यह हमारा सक्रिय प्रयास होना चाहिये कि हम अपने देशवासियों के दुःखों का निवारण करने के लिए उन्हें नवीन सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था उपलब्ध करें जो इस बात का विश्वास दिलाए कि प्रत्येक व्यक्ति को उचित जीवन बिताने के लिए मूल आवश्यकताएं प्राप्त होंगी, जिनके अभाव में जीवन के गहरे मूल्यों की ओर बढ़ना वास्तव में असम्भव है। इस सन्दर्भ में अस्पृश्यता जैसी बेतुकी असंगतियाँ हिन्दूधर्म की आधारशिला को बनाने वाले सिद्धान्तों के नितान्त विपरीत हैं।

आध्यात्मिक अनुभव की प्रमुखता

हिन्दूधर्म का मुख्य तत्त्व यह है कि इसने बौद्धिक विवाद अथवा सिद्धान्त प्रस्तुत करने के स्थान पर हमेशा आध्यात्मिक अनुभव को प्रमुखता दी है। आज यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है जब कि मनुष्य और स्त्रियाँ, विशेषतः छोटे आयुवर्ग के, सिद्धान्तों की खोज में नहीं हैं बल्कि आधुनिक जीवन निर्वाह की चुनौतियों का सामना करने के लिए किसी वास्तविक ढंग को चाहते हैं। हिन्दूधर्म ने सदा ही इस बात पर बल दिया है कि धर्म वह सत्य है जिसे आत्मा के बढ़ते हुए प्रकाश में जीवन में उतारना चाहिये; केवल मानसिक विवाद के अनन्त अन्धेरे में तर्क-वितर्क से नहीं। उदाहरणार्थ 'गीता' में स्पष्ट लिखा है कि एक भगवद्ज्ञान प्राप्त मनुष्य के लिए धार्मिक ग्रन्थ इस प्रकार बेकार हैं जिस प्रकार बाढ़ में एक कुआँ। रामकृष्ण इसे अधिक स्पष्टता से इस प्रकार बताते हैं कि किसी गधे पर ग्रन्थ लादने से वह ज्ञान को प्राप्त नहीं होता। हिन्दूधर्म आध्यात्मिक अनुभव के स्पष्ट लक्ष्य को स्वीकार करता है और इसपर बल देता है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था उस लक्ष्य की ओर चलने के लिये एक नया अवसर प्रदान करती है। हमारे जीवन की सभी अवस्थाएं, सुखद या दुःखद, अच्छी अथवा बुरी, हमारे भीतरी विकास के लिए बहुत से अवसर हैं, इस रूप में उनका स्वागत होना चाहिए। यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि जहाँ तक आध्यात्मिक उपलब्धि का सम्बन्ध है, हिन्दू समाज ने, अपने दृढ़ विभाजन का विचार न करते हुए, भगवत्प्राप्त सन्त को अधिकतम प्रतिष्ठा दी है, चाहे वह किसी भी जाति अथवा आर्थिक वर्ग से हो।

ये सिद्धान्त हिन्दूधर्म में प्रमुख हैं; चाहे वे किसी भी प्रकार से केवल इसी की सम्पत्ति नहीं हैं। वे भगवत्प्राप्त सन्तों की आध्यात्मिक उपलब्धियों पर आधारित हैं और मनुष्य की वर्तमान दशा से निर्णायक रूप से सम्बद्ध है, क्योंकि वे आध्यात्मिक मूल्यों की वह सुदृढ़ आधार-भूमि उपलब्ध करते हैं जिसपर आर्थिक कल्याण, सामाजिक एकता और बौद्धिक स्वतंत्रता की सम्पूर्ण संरचना का निर्माण किया जा सकता है।

यदि आज धर्म अपने तंग दृष्टिकोण की कट्टरता की वेड़ियों में बंधे रहते हैं तो वे आने वाली पीढ़ियों के लिए नितान्त असंवद्ध हो जाएंगे और मनुष्य के भीतर एक रिक्तता उत्पन्न कर देंगे जिसको कोई भी भौतिक उन्नति पूरा करने के योग्य नहीं होगी।

यह सत्य है कि आर्थिक समस्याएं बहुत ही महत्त्व रखती हैं, सबसे अधिक मनुष्य जाति के उन वर्गों के लिए जो अभी तक जीवन निर्वाह के स्तर से नीचे रहते हैं। और यह स्पष्ट है कि आर्थिक उत्थान आध्यात्मिक प्राप्ति की प्रतीक्षा नहीं कर सकता। परन्तु यह बात भी सत्य है कि वे देश और समाज के वे वर्ग जिन्होंने आर्थिक प्रचुरता को उपलब्ध कर लिया है, आवश्यक रूप से सुख और पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सके हैं। बहुत शताब्दियाँ पहले उपनिषदों ने कहा था "मनुष्य धन से कभी सन्तुष्ट नहीं होता।" यदि आज हम गहरे आध्यात्मिक मूल्यों को छोड़कर केवल आर्थिक लक्ष्यों को ही अपने सम्मुख रखते हैं तो हम आकाश यान की पृथ्वी के साधनों का इतना अधिक उपयोग करेंगे कि हमारी पृथ्वी खाली हो जाएगी और हमें फिर भी प्रसन्न और सम्पूर्ण व्यक्ति उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त नहीं होगी।

वास्तव में हिन्दूधर्म आज चौराहे पर खड़ा है। इसका कारण यह है कि सारी मनुष्यजाति ही आज इस स्थान पर खड़ी है? प्रश्न यह नहीं है कि कोई विशेष धर्म सच्चा है अथवा झूठा, बल्कि अभिप्राय यह है कि क्या वह धर्म अभी भी मनुष्यों के कार्यों में शक्तिशाली और रचनात्मक सिद्ध हो सकता है? कुछ लोग धर्म को बचपन से ही चली आ रही सिरदर्द और फालतू बोझ मानते हैं जिसको वे जितना शीघ्र हो सके, पूर्णरूप से छोड़ देना चाहते हैं। मेरा अपना विचार यह है कि प्रत्येक महान धर्म के भीतर आध्यात्मिक सत्य तथा प्रेरणा का अन्तर्भाग होता है जो, फालतू और असंवद्ध न होकर, सम्भवतः उस सत्य के प्रकाश को उपलब्ध कर सकता है जिसकी आज मानवजाति को, जो एक नये युग के द्वार पर खड़ी है, आवश्यकता है।

मेरा यह भी विश्वास है कि हिन्दूधर्म इस समय, जब कि मानव

उन सीमाओं को तोड़ रहा है जो उसे लाखों वर्षों से इस पृथ्वी से बान्धे हुए थीं, और सितारों तक पहुँच रहा है, एक न्यायपूर्ण और व्यवहार्य सांसारिक दृष्टिकोण उपलब्ध करने के लिए विशेष रूप से अनुकूल है। मानवजाति जीवन निर्वाह की नयी धारणा की ओर, विकास के ताजे प्रहार के प्रवेश द्वार पर खड़ी है। अन्ततोगत्वा, अजात पीढ़ियों द्वारा महान धर्मों का मूल्यांकन, जिनमें हिन्दूधर्म भी सम्मिलित है, इस बात पर निर्भर करेगा कि वे इस नये भेदन के रचनात्मक परिपोषण में कहाँ तक योग्य हैं।

*डॉ० करण सिंह द्वारा रचित 'In Defence of Religion and Other Essays' का संक्षेपण। आज्ञा से पुनर्मुद्रित।

वे सब प्रक्रियाएं जो कि प्रभु का साक्षात्कार पाने हेतु की जाती हैं सात्त्विक कहलाती हैं। सत्यप्रियता, न्यायशीलता, अनुकम्पा, भक्ति-श्रद्धा, स्वच्छता, पवित्रता, उच्चचरित्रता और आत्म-साक्षात्कार—अन्ततः प्रभु के दर्शन करवाने में सहायक सिद्ध होते हैं। जैसे जैसे साधक इन शुद्ध, पवित्र कार्यों में लगा चला जाता है, वैसे वैसे उसको अपने और परमात्मा के बीच के सम्बन्ध का स्मरण होता जाता है; तत्पश्चात उसको कोई संशय नहीं रहता, और सभी क्षणभंगुर, नाशवान, ऐन्द्रिय-सौख्य की ओर से वह मुख मोड़ लेता है

—भगवद्-गीता

भक्तों के पत्र—देश-देशान्तर से
(Letters from Devotees Around the World)

जब मैं अपने आध्यात्मिक पाठों अथवा एस० आर० एफ०/योगदा सत्संग की अन्य पुस्तकों के अध्ययन में लगता हूँ तो एक अरुचिकर स्वप्न से सुखद वास्तविकता में जागने का सा अनुभव होता है···। शिक्षाओं से मुझे क्या प्राप्त हुआ है? भगवान के अधिक समीप, जिस संभावना का स्वप्न मैंने कभी नहीं देखा था। एस० आर० एफ०/योगदा सत्संग पाठों में मुझे भगवत्प्राप्ति के लिए एक ऐसी युक्ति मिली है जो मेरे लिए व्यवहारिक है।—**एम० सी० आर० मिसौरी, यू० एस० ए०**

✱

श्री श्री सरस्वती पूजन में उपस्थित होने के पश्चात् घर को आते समय मार्ग में मेरे १७ वर्षीय पौत्र ने एक छोटी सी बालिका को सड़क में आ रहे ट्रक के रास्ते में भागते देखा। वह तुरन्त ही उसे संभावित निश्चित मृत्यु से बचाने की चेष्टा में सड़क में कूद पड़ा। भगवत्कृपा से वह छोटी बालिका तक पहुँच गया और उसे उठाकर सड़क किनारे की ओर फेंक दिया। वह उस हानि से बच गई। परन्तु ऐसा करने में वह स्वयं फिसल गया और सपाट सड़क पर गिरा। उसका सिर आगे आ रहे ट्रक के पहिये से कुछ ही फीट पर था। उसी समय दूसरी ओर से एक यात्री गाड़ी आ पहुँची।

सड़क के दोनों ओर से लोग भयभीत होकर चिल्ला उठे, क्योंकि यह निश्चित था कि वह ट्रक के नीचे आकर कुचला जाएगा। बस के निकलने से थोड़ी देर के लिए वे इस घटना को न देख पाए। परन्तु जब गाड़ियाँ अलग हुईं तो उन्होंने देखा कि अन्तिम क्षण में उसने बस के पीछे लगी एक सलाख को अपने बाएं हाथ से पकड़ लिया था और

बस उसे सड़क पर घसीटते ले जा रही थी। इस घटना के दौरान वह अपने दायें हाथ में एक लटकन (pendant) को मजबूती से पकड़े हुए था जिसपर परमहंस योगानन्द जी का चित्र था।

जब क्रोधित लोगों की भीड़ गाड़ियों के चालकों को पकड़ने के लिए भाग कर आई तो वे लड़के को, बिना किसी चोट के, उठकर खड़ा होते देखकर आश्चर्यचकित रह गई। लटकन वाले चित्र को उसी प्रकार पकड़े हुए उसने लोगों से चालकों को क्षमा करने के लिए कहा क्योंकि उसका और उस लड़की का जीवन, भगवान और गुरु की कृपा से बच गया था"—ए० बी० एस०, मिदनापुर, भारत

मैं योगिक युक्तियों के अभ्यास का लाभ उठा रहा हूँ, विशेषतः हंसः प्रविधि का। हंसः प्रविधि के अभ्यास से ही मेरा कालेज का समय निकलता है। जहाँ भी मैं होता हूँ, यह मेरे शरीर, विचारों तथा कार्यों में महान शान्ति उपलब्ध करती है।—पी० के० एफ०, स्प्रिंग वैली, कैलीफोर्निया

उस व्यक्ति को जो दुःखी अथवा उद्वेगित है, मैं परामर्श देता हूँ कि वह शुद्ध हृदय से निम्नलिखित पुस्तकें पढ़े: *योगी-कथामृत, मानव की निरन्तर खोज* (Man's Eternal Quest), और *केवल प्रेम* (Only Love)। उसमें परिवर्तन आएगा और वह जीवन में मार्गदर्शन और शान्ति को प्राप्त करेगा।—ए० डी० पी०, बम्बई, भारत

विभिन्न योगदा प्रविधियों के अभ्यास के प्रारम्भ से ही मैंने अपने जीवन में शान्ति और विरोधी तत्त्वों से सुलझने की योग्यता की वृद्धि का अनुभव किया है। ये प्रविधियाँ आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति के लिए एक सुनिश्चित, व्यवहारिक मार्ग उपलब्ध कराती हैं।—जे० डी० एमली, आयरलैण्ड

श्री श्री दयामाता जी का पत्र
भक्तों के नाम
(Letter to the Devotees)

जुलाई-अगस्त १९८३

प्रिय आत्मन्,

लोगों के साथ हमारे दैनिक संयोजनों का हमारी ईश्वर खोज के प्रति महत्वपूर्ण स्थान है। यदा-कदा जिज्ञासुओं के मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि वे किसी शान्त एकान्त-वास द्वारा ईश्वर को अधिक शीघ्रता से प्राप्त कर पाएंगे। परन्तु स्वयं अकेले में ईश्वर को पाना अति कठिन है। ऐसा क्यों? इसलिए कि जहाँ कहीं भी आप जाते हैं आप अपने सीमाबन्धन, स्वभाव तथा चित्तवृत्तियों को अपने साथ ही ले जाते हैं और जहाँ पर विरोध न हो वहाँ परिवर्तन लाने की प्रेरणा उत्पन्न नहीं होती। निर्विरोध रहने से अहम् विशिष्ट रूप धारण कर लेता है और आप स्वयं में कोई परिवर्तन नहीं ला सकते।

साधारणतः केवल अन्य लोगों के साथ दैनिक पारस्परिक क्रियाओं के माध्यम द्वारा ही हमारी चरित्र त्रुटियों का अनावृत होना संभव है। हमारी अप्रिय धारणायें प्रतिरोध का सामना करती हैं अथवा दुःखद घटनाओं द्वारा बढ़ जाती हैं। तब हम बाध्य होकर इनको पहचानते हैं और अपनी त्रुटियों पर विजय प्राप्त करते हैं। विभिन्न व्यक्तियों के साथ पारस्परिक क्रियाएं एक झावे के समान हमारी आत्मा पर बनी अहम् की पेपड़ी को उखाड़ फैंकती हैं। समंजन तथा सुधार की आवश्यकता हमारे विकास को बढ़ावा देती है।

दूसरों को अवलोकन करने से भी ऐसा ही होता है। हम उनकी भूलों से प्रभावित हो अपनी निजि दुःखद भूलों को रोक सकते हैं। दूसरों की त्रुटियों की आलोचना करने के स्थान पर हमें यह प्रार्थना करनी चाहिए: "हे प्रभु इस त्रुटि से वचने के लिए मेरे सहायक वनो।" हम दूसरों के सद्‌गुणों से भी लाभ उठा सकते हैं जिनसे प्रेरित हो हम अपने भव्य गुणों को उत्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार और अधिक पूर्णता तथा ईश्वर चैतन्य की ओर बढ़ सकते हैं यदि हम स्वयं में परिवर्तन लाने के इच्छुक हों:

एक स्वार्थी जीवन की संकीर्ण सीमान्त में सुखी रहना संभव नहीं है। इस संसार में शान्त तथा संतुलित जीवन व्यतीत करने के लिए हमें दूसरों के विषय में विचारशील होना चाहिए और जव हम ऐसा करते हैं तो हम और अधिक समझ तथा पूर्ति के द्वार खोल लेते हैं।

हम इस संसार में ईश्वर से पुनर्मिलन के लिए पैदा किये गये हैं ताकि उससे अप्रतिवन्धित प्रेम द्वारा द्वन्द्वता के पार पहुँच सकें। चाहे मनुष्य का आचरण अच्छा है, अथवा वुरा, मैत्रीपूर्ण अथवा विरोधी, परन्तु उसकी आत्मा फिर भी अनिवार्य रूप से ईश्वर का एक अंश है। ईश्वर प्रत्येक आकृति के यथातथ्य पीछे है। जो जिज्ञासु अपने व्यक्तित्व को भूल एकमात्र ईश्वर को ही प्रसन्न करने का प्रयास करता है और उसे सर्व में देखता है वह शीघ्रता से उसके शाश्वत अंगीकार को प्राप्त होता है।

दिव्य प्रेम तथा आशीर्वाद

Daya Mata

दयामाता

YSS/SRF DIRECTORY OF MATHS, ASHRAMAS and MEDITATION CENTRES

YSS **SRF**

Sri Sri Daya Mata, *Sanghamata and President*

YOGODA SATSANGA SOCIETY OF INDIA (YSS)

Founded in India by Sri Sri Paramahansa Yogananda in 1917

SELF-REALIZATION FELLOWSHIP (SRF)

Founded in America by Sri Sri Paramahansa Yogananda in 1920

YOGODA SATSANGA SOCIETY OF INDIA

For information about Yogoda Satsanga Society activities, write to the General Secretary, Yogoda Satsanga Society of India, Yogoda Satsanga Sakha Math, Paramahansa Yogananda Path, Ranchi-834001, Bihar, India.

Headquarters and Ashrama Centres

CALCUTTA (Dakshineswar) West Bengal: *Registered Office,* Yogoda Satsanga Society of India, Yogoda Satsanga Math, Dakshineswar, Calcutta 700076, West Bengal. Telephone 58-1931. Yogoda Satsanga Ashrama, Publication Section, and Yogoda Satsanga Press.

RANCHI, Bihar—Yogoda Satsanga Society of India, Yogoda Satsanga Sakha Math, Paramahansa Yogananda Path, Ranchi-834001, Bihar. Telephone 23724. Yogoda Satsanga Sakha Ashrama.

DWARAHAT, Uttar Pradesh—Ashrama and Retreat. Yogoda Satsanga Sakha Ashrama, Kaunla (Rauteli), P. O. Dwarahat 263 653, District Almora.

Andhra Pradesh: Hyderabad
Bihar: Patna
Gujarat: Ahmedabad, Bhavnagar, Gandhinagar, Rajkot, Surat
Himachal Pradesh: Simla
Jammu and Kashmir: Jammu
Maharashtra: Bombay
Karnataka: Bangalore, Mangalore
Orissa: Puri (Swami Sriyukteswar Samadhi Mandir)
Punjab: Patiala
Tamil Nadu: Madras
Union Territories: Chandigarh, New Delhi
Uttar Pradesh: Aligarh, Dwarahat, Lucknow, Suraikhet
West Bengal: Anandapur, Bherir Bazar, Calcutta, Ghatal, Handol, Ismalichak, Kalidan, Lakhanpur, Palpara, Rangamati, Serampore and Sinthibinda.
Kadamtala and Serampore (Gurudham Centres—Yogoda Satsanga affiliates)

Schools and Charitable Dispensaries

BIHAR

Ranchi: Yogoda Satsanga Mahavidyalaya (college) Yogoda Satsanga Homœopathic Mahavidyalaya; Yogoda Satsanga Vidyalaya (boys' school), Yogoda Satsanga Kanya Vidyalaya (girls' school), Yogoda Satsanga Sangeet Kala Bharati (music school) and Yogoda Satsanga Shilpa Kala Bharati (fine arts and crafts school), Yogoda Satsanga Balkrishnalaya (Montessori-type school for young children); Yogoda Satsanga Sevashrama Hospital (allopathic and homœopathic sections), Pathological Laboratory, eye clinic.

UTTAR PRADESH

Suraikhet: Yogoda Satsanga Intermediate College, High School, and Primary School.

WEST BENGAL

Anandapur: Paramahansa Yogananda Vidyalaya.

Bherir Bazar: Yogoda Satsanga Vidyalaya and Homœopathic dispensary.

Ghatal: Yogoda Satsanga Sriyukteswar Vidyapith (boys' school).

Ismalichak: Yogoda Satsanga Brahmacharya Vidyalaya (boys' school).

Kalidan: Sriyukteswar Smriti Mandir and Library, Primary School.

Lakhanpur: Yogoda Satsanga Kanya Vidyalaya (girls' school), Yogoda Satsanga Kshirodamoyee Vidyapith (boys' school).

Palpara: Yogoda Satsanga Mahavidyalaya, Yogoda Satsanga Vidyalaya (boys' school), Yogoda Satsanga Balika Vidyalaya (girls' school), Yogoda Satsanga Junior Basic School, Medical Dispensary.

Pyaracbak: Sriyukteswar Kanya Vidyapith (girls' school).

Serampore: Homœopathic dispensary.

SELF-REALIZATION FELLOWSHIP (YOGODA SATSANGA SOCIETY OF INDIA)

For information about Self-Realization Fellowship activities, write to Self-Realization Fellowship, 3880 San Rafael Avenue, Los Angeles, California 90065, U.S.A.

LOS ANGELES, California, U.S.A: The Mother Center, 3880 San Rafael Avenue (Zip code 90065). Telephone (213) 225-2471. Visiting hours, 9:30 a.m. to 5:00 p.m. Tuesday through Saturday, and 1:00 to 5:00 p.m., on Sunday. Closed on Mondays. All are welcome.

Self-Realization Fellowship Ashrama Centres and Temples

ENCINITAS, California: Ashrama, Retreat, and Hermitage, 215 K Street at Second. P.O. Box 758. Telephone (610) 753-2888. Temple: 939 Second Street. Telephone (619) 753-1811

Services: Sunday lecture 9:30 a.m. and 11:00 a.m., Thursday lecture 8:00 p.m.

Self-Realization Fellowship Retreat: Guest accommodation. For reservations write c/o P.O. Box 758 (Zip Code 92024) or telephone (619) 753-1811.

ESCONDIDO, California: SRF Hidden Valley Ashrama Centre and guest accommodation for men.

FULLERTON, California: Temple, 142 East Chapman Avenue. (Zip Code 92632) Telephone (619) 525-1291.

Services: Sunday lecture 11:00 a.m., Thursday lecture 8:00 p.m.

HOLLYWOOD, California: Ashrama, Temple, and India Hall, 4860 Sunset Boulevard. Telephone (213) 661-8006.

Services: Sunday lectures 9:30 a.m. and 11:00 a.m., Thursday lecture 8:00 p.m.

PACIFIC PALISADES, California: Ashrama, Temple, Lake Shrine, and Mahatma Gandhi World Peace Memorial, 17190 Sunset Boulevard. Telephone (213) 454-4114. Open to public, daily 9:00 a.m.-5:00 p.m. except Mondays and holidays.

Services: Sunday lectures 9:00 and 11:00 a.m., Thursday lecture 8:00 p.m.,

PASADENA, California: Temple, 150 North El Molino Avenue. Telephone (213) 578-9765 or (213) 225-2471.

Services: Sunday lecture 11:00 a.m., Thursday lecture 8:00 p.m.

PHOENIX, Arizona: Temple, 6111 North Central Avenue, Telephone (602) 279-6140 or 266-7556.

Services: Sunday lecture 10:00 a.m.; Thursday lecture 8:00 p.m.

RICHMOND, California: Temple, 6401 Bernhard Avenue. Telephone (415) 232-6652.

Services: lecture 11:00 a.m.; Thursday lecture 8:00 p.m.

SAN DIEGO, California: Temple, 3072 First Avenue. Telephone (619) 295-0170.

Services: Sunday lectures 9:30 and 11:00 a.m., Thursday lecture 8:00 p.m.

Self-Realization Fellowship Centres and Meditation Groups

For information about meetings, write to Self-Realization Fellowship.

UNITED STATES:

ALABAMA: Montevallo
ALASKA: Fairbanks
ARIZONA: Flagstaff, Tucson
CALIFORNIA: Bakersfield, Carmel, Escondido, Fresno, Los Gatos, Palm Springs, Redondo Beach, Redwood City, Sacramento, San Fernando Valley, San Francisco, Santa Barbara, Santa Rosa
COLORADO: Boulder, Colorado Springs, Denver, Grand Junction
CONNECTICUT: Milford
DISTRICT OF COLUMBIA: Washington
FLORIDA: Clearwater, Fort Lauderdale, Gainesville, Miami, Tallahassee
GEORGIA: Atlanta
HAWAII: Honolulu, Kailua
IDAHO: Sandpoint
ILLINOIS: Chicago
INDIANA: Bloomington, Indianapolis, West Baden Springs
IOWA: Des Moines, Iowa City
LOUISIANA: Shreveport
MARYLAND: Baltimore
MASSACHUSETTS: Boston
MICHIGAN: Detroit, Grand Rapids, Kalamazoo, Oak Park
MINNESOTA: Minneapolis
MISSOURI: Kansas City, St. Louis
MONTANA: Helena
NEBRASKA: Lincoln
NEVADA: Las Vegas, Reno
NEW JERSEY: Princeton, Scotch Plains, Vincentown
NEW MEXICO: Albuquerque
NEW YORK: Glens Falls, Ithaca, New York City, Rochester
OHIO: Cincinnati, Cleveland, Dayton
OREGON: Eugene, Portland, Salem
PENNSYLVANIA: Newfoundland, Philadelphia, Pittsburgh
SOUTH CAROLINA: Spartanburg
TENNESSEE: Nashville
TEXAS: Austin, Dallas, El Paso, Houston, San Antonio

UTAH: Salt Lake City
VERMONT: SRF Retreat Shaftsbury
VIRGINIA: Front Royal, Virginia Beach
WASHINGTON: Bremerton, Seattle
WISCONSIN: Madison, Milwaukee

ARGENTINA: Buenos Aires, Cordoba, La Plata, Mar del Plata, Salta
AUSTRALIA: Brisbane, Canberra, Perth, Sydney, Woodbridge
AUSTRIA: Graz, Vienna
BELGIUM: Antwerp, Brussels
BOLIVIA: Cochabamba
BRAZIL: Campinas, Niteroi, Nova Friburgo, Petropolis, Porto Alegre, Rio de Janeiro, Salvador, Sao Paulo
CANADA: Calgary, Edmonton, Hamilton, London, Montreal, Ottawa, Quebec, Toronto, Vancouver, Victoria, Winlaw, Winnipeg
CHILE: Santiago, Valparaiso
COLOMBIA: Bogota, Buga, Cali, Ibague, Manizales, Medellin
DENMARK: Copenhagen
DOMINICAN REPUBLIC: Puerto Plata, Santiago, Santo Domingo
ECUADOR: Cuenca
ENGLAND: Ascot, Brighton, Cambridge, Dudley, Ideford-Devonshire, Liverpool, London, South London
FINLAND: Helsinki
FRANCE: Aureilhan, Bordeaux; Grenoble, Lyon, Paris Pau, Strasbourg
GERMANY: Bamberg, Berlin, Cologne, Frankfurt, Giessen, Goslar, Hamburg, Hannover, Heidelberg, Kolbermoor, Munich, Nuernberg, Solingen, Stuttgart, Wiesbaden, Wurzburg
GHANA: Accra
GREECE: Athens
GUATEMALA: Guatemala City
ICELAND: Reykjavik
ITALY: Bologna, Catania, Florence, Genoa, Grosseto, Livorno, Milan, Naples, Padova, Palermo, Piombino, Raffadali, Reggio Emilia, Ribera, Rome, Salerno, Treviso, Trapani, Turin, Udine
JAPAN: Tokyo

MEXICO: Guadalajara, Mexico City, Monterrey, Morelia, Saltillo

NETHERLANDS: Amstelveen, Groningen, The Hague. Nijmegen, Rotterdam

NEW ZEALAND: Auckland, Palmerston, Rotorua, Wellington

NORWAY: Oslo

PARAGUAY: Asuncion

PERU: Lima

PUERTO RICO: San Juan

SINGAPORE: Singapore

SOUTH AFRICA: Pietermaritzburg

SPAIN: Barcelona, Granada, Madrid,

SWEDEN: Hassleholm

SWITZERLAND: Basel, Bern Zurich.

TRINIDAD: Point Fortin, San Fernando

VENEZUELA: Caracas, San Cristobal, San Jose de Guanipa

उद्देश्य और आदर्श

योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया
तथा
सेल्फ-रीयलाइजेशन फैलोशिप

श्री श्री परमहंस योगानन्द जी, संस्थापक
श्री श्री दयामाता जी, अध्यक्ष तथा संघमाता
द्वारा निश्चित

ईश्वर की प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभूति प्राप्त करने के लिए सुनिश्चित वैज्ञानिक प्रविधियों के ज्ञान का विभिन्न राष्ट्रों में प्रचार करना।

यह शिक्षा देना कि स्वयं प्रयास द्वारा मनुष्य के अनित्य चैतन्य को ईश चैतन्य में विकसित करना जीवन का उद्देश्य है और इस ध्येय की उपलब्धि के लिए सेल्फ-रीयलाईजेशन फैलोशिप/योगदा सत्संग मन्दिरों की ईश्वर सम्पर्क के लिए संपूर्ण विश्व में स्थापना करना तथा मानव जाति को घरों व हृदयों में ईश्वर के व्यक्तिगत मन्दिरों की स्थापना हेतु प्रोत्साहित करना।

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट मूल योग और क्राइस्ट द्वारा उपदिष्ट मूल ईसाई धर्म निहित पूर्ण सामञ्जस्य एवं मूलभूत एकता पर प्रकाश डालना और यह दर्शाना कि सत्य के ये सिद्धान्त सभी सच्चे धर्मों के सामान्य वैज्ञानिक आधार हैं।

एक ही दिव्य राजमार्ग को इङ्गित करना जिसकी ओर सच्चे धर्मों के सारे पथ अन्ततः पहुँचाते हैं। वह राजमार्ग ईश्वर का दैनिक वैज्ञानिक भक्तिमय ध्यान करना है।

मनुष्य को तीन प्रकार के कष्टों—शारीरिक रोग, मानसिक अशान्ति और आध्यात्मिक अज्ञान—से मुक्त करना।

"सादा जीवन और उच्च विचार" को प्रोत्साहित करना, तथा मानव-जाति के मध्य उनकी एकता के शाश्वत आधार—ईश्वर से संबन्ध की शिक्षा देकर बन्धुत्व की भावना का प्रचार करना।

शरीर पर मन और मन पर आत्मा की वरिष्ठता प्रतिपादित करना।

बुराई पर भलाई से, दुःख पर आनन्द से, क्रूरता पर दया से, और अज्ञान पर ज्ञान से विजय पाना।

विज्ञान और धर्म में उनके मूलभूत सिद्धान्तों की एकता के प्रत्यक्ष निरूपण द्वारा सामञ्जस्य स्थापित करना।

पूर्व और पश्चिम के बीच आध्यात्मिक सौमनस्य का विकास करना और उनके सर्वोत्तम विशिष्ट दृष्टिकोणों के आदान-प्रदान का समर्थन करना।

अपनी ही वृहद् आत्मा (परमात्मा) के रूप में मानव जाति की सेवा करना।
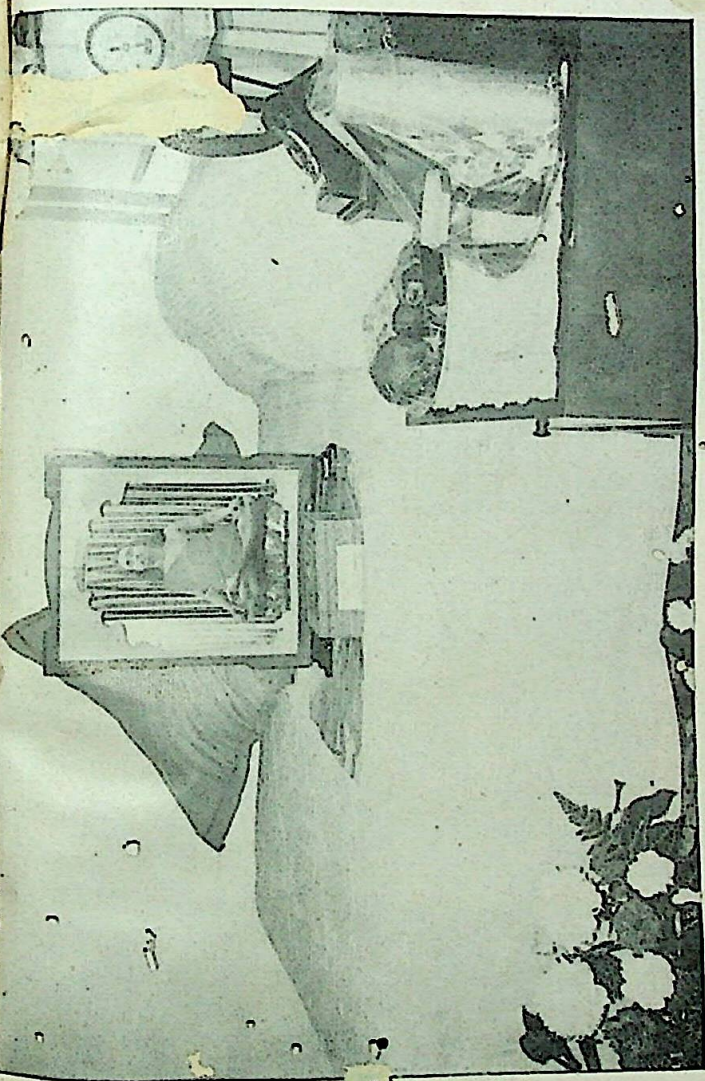
माऊण्ट वाशिङ्गटन, लॉस एंजलस में एस० आर० एफ० के अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय में परमहंस योगानन्द जी का शयन कक्ष। स्टैण्ड पर तथा अलमारियों में पड़ी वस्तुएं परमहंस जी प्रयोग कि करते थे।

कटक में नेहरु पल्ली कुष्ट बस्ती में योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया ने चार कमरों की एक बिल्डिंग बनाकर रहने के लिए सौंप दी है। प्रत्येक कमरे के साथ एक छोटा बरामदा तथा रसोई की जगह है और इसमें दो असहाय कुष्ट रोगियों के लिए निवास का स्थान है। बिल्डिंग की पिछली ओर स्नान तथा शौचालय क्षेत्र है और दाईं ओर पानी का कुआँ।